राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा

2005

विद्ययाऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राक्कथन

हमारे बच्चों को क्या पढ़ाया जाए और कैसे पढ़ाया जाए, इसकी ओर जनता का ध्यान ले जाने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. ने सामाजिक विचार-विमर्श की एक कमाल की प्रक्रिया शुरू की। खुशकिस्मती से मुझे उसमें हिस्सा लेने का मौका मिला है। विचारों और अपेक्षाओं के इस व्यापक और गहन मंथन में मैंने बड़ी तादाद में खास शख्सियतों के साथ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के इस दस्तावेज़ को तैयार करने में काम किया। इन सभी लोगों के नाम इस दस्तावेज़ में दिए गए हैं।

इस दस्तावेज़ में काफी विश्लेषण है और ढेर-सारी सलाह भी। इन सबके साथ यह बार-बार याद दिलाया गया है कि विशिष्टताओं से फर्क पड़ता है, मातृभाषा अत्यंत महत्त्वपूर्ण माध्यम है, कि बच्चों को उनके अपने ज्ञान-सृजन में सक्षम बनाने में सामाजिक, आर्थिक और जातीय पृष्ठभूमि का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मीडिया और शैक्षिक तकनीकी के महत्त्व को स्वीकार किया गया है, लेकिन शिक्षक की भूमिका केंद्रीय बनी रहती है। विविधताओं पर ज़ोर है लेकिन उन्हें भी समस्याओं की तरह नहीं देखा गया है। इस बात को निरंतर स्वीकारा गया है कि सीखने की सामाजिक प्रक्रिया मूल्यवान है और उसके साथ समन्वित होकर औपचारिक पाठ्यचर्या में और अधिक समृद्धि आएगी। विविधता की प्रशंसा की गई है, उससे हर्ष होता है, और एक समझ प्रस्तुत की गई है कि एक व्यापक ढाँचे के तहत कई उपागम होंगे तो सृजनात्मकता को बढ़ावा मिलेगा।

यह दस्तावेज़ बारंबार बच्चों पर पाठ्यचर्या के बोझ के सवाल की ओर लौटता है। इस मामले में लगता है, हम किसी गर्त में गिरे पड़े हैं। हमने समझ के बदले थोड़े वक्त के लिए काम आने वाली जानकारी के अंबार को अपना लिया है। इस प्रक्रिया को उलटना होगा। खासकर इस वक्त जबकि वह सब कुछ जो याद किया जा सकता है, फट पड़ने को तैयार है। हमें अपने बच्चों को समझ का चस्का लगने देना चाहिए जिससे उन्हें सीखने में मदद मिले और जब वे कतरों और बिंबों में संसार को देखें और जिंदगी की लेन-देन में दाखिल हों तो अपने मुताबिक ज्ञान का रूपांतर कर पाएँ। ज्ञान का ऐसा स्वाद हमारे बच्चों के वर्तमान को पूर्णतः सृजनात्मक और आनंदप्रद बना सकेगा। वे जानकारियों के आधिक्य के उस आघात से मूर्च्छित न हों जिसकी ज़रूरत सिर्फ थोड़े वक्त के लिए उस बाधा दौड़ के पहले पड़ती है जिसे हम इम्तिहान कहते हैं। खुद ही अपनी ओर से थोपी गई इस आफत से निकलने के कुछ रास्ते इस दस्तावेज़ में सुझाए गए हैं। इस क्षेत्र में थोड़ी कामयाबी मिलने से हमें यह भी पता चल सकेगा कि हमने सीखने की क्षमता को समझना शुरू कर दिया है और हमें इसका भी अहसास हो गया है कि बच्चों के स्मृतिकोश पर उन जानकारियों को लादना व्यर्थ है जिन्हें दरअसल पन्नों पर स्याह निशानों या कंप्यूटर पर 'बिट्स' की तरह ही रहने देना चाहिए।

शिक्षा कोई भौतिक वस्तु नहीं है जिसे शिक्षक या डाक के जरिए कहीं पहुँचा भर दिया जा सके। उर्वर और ऊर्जादायी शिक्षा की जड़ें हमेशा ही बच्चे की भौतिक और

सांस्कृतिक ज़मीन में गहरे पैठी होती हैं और उन्हें माता-पिता, शिक्षकों, सहपाठियों और समुदायों के साथ पारस्परिक क्रियाओं से पोषण मिलता है। इस दायित्व के संदर्भ में शिक्षकों की भूमिका और प्रतिष्ठा को रेखांकित करने और सुदृढ़ करने की ज़रूरत है। खरे ज्ञान के सृजन में हमेशा ही पारस्परिकता अंतर्निहित होती है। अगर बच्चे को निष्क्रिय रहने को मजबूर न किया जाए तो इस आदान-प्रदान में शिक्षक भी सीखता है। चूँकि बड़ों के मुकाबले बच्चों की अवलोकन और अनुभूति में अधिक गहराई होती है, ज्ञान के सर्जक के रूप में उनकी संभावनाओं की हमें अधिक समझ होनी चाहिए। अपने अनुभव के आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जो भी थोड़ी बहुत मेरी समझ है उसका अच्छा-खासा हिस्सा बच्चों के साथ मेरे संवाद का नतीजा है। यह दस्तावेज़ इस पहलू की भी पड़ताल करता है।

यह दस्तावेज़ इतना समृद्ध और व्यापक न होता अगर इसकी रचना प्रक्रिया से जुड़े सभी लोग एक खास तरह की ज्वाला के घेरे में न होते। मुझे नहीं मालूम कि यह लौ किसने सुलगाई — शायद किसी एक व्यक्ति ने नहीं। शायद यह एक ऐसे बिंदु पर घटित हुआ जब हम सबकी बेचैनी फट पड़ने की हद को पहुँच गई थी। इसमें शामिल ज़्यादातर लोगों को लग रहा था कि अब बहुत हो चुका। शायद उनमें से कुछ का उत्साह संक्रामक था।

दसियों साल पहले हमने जैसा चाहा था, उस तरह चीज़ों के न हो पाने का दोष दूसरों पर मढ़ने का लालच तो होता है लेकिन हमने दोषारोपण के इस खेल से बचने की कोशिश की है — शायद इस वजह से भी कि किसी न किसी रूप में हम सभी इसके लिए जवाबदेह हैं। हममें से ज़्यादातर लोग ज़िम्मेदार हैं, क्योंकि हम उस मध्य वर्ग के सदस्य हैं जो इस मुल्क की जनता से भावात्मक रूप से खुद को अलग करता गया है। इस दस्तावेज़ में बहुलता, समता और न्याय जैसे शब्दों की बारंबारता मुझे असाधारण मालूम पड़ी है। मैं नहीं मानता कि ये किसी राजनैतिक शब्दाडंबर का हिस्सा हैं क्योंकि हमने अपने सुदीर्घ विचार-विमर्श में राजनीति पर बहुत कम बात की है। मुझे भरोसा है कि ऐसा इसीलिए हो पाया क्योंकि हमें यह विश्वास हो गया था कि वर्तमान में वंचित हमारे तीन-चौथाई लोगों में हमारी शक्ति है। सामाजिक रूप से अर्जित उनकी क्षमताओं और हुनर और हमारे शैक्षणिक संस्थानों के लक्ष्यों के मेल से ही प्रतिभाओं और कौशलों में विशिष्ट उत्कृष्टता हासिल की जा सकती है।

यह दस्तावेज़ इस दिशा में आगे बढ़ने के रास्ते/उपाय/तरीके सुझाता है। यहाँ सुझाई गई कुछ व्यवस्थागत तब्दीलियों से ज़रूर ही इसमें मदद मिलेगी। मुझे उम्मीद है कि हम समान स्कूल पद्धति, काम और शिक्षा तथा बच्चों का उनके घर और परिवेश की भाषा के साथ औपचारिक शिक्षा में प्रवेश जैसे विचारों पर सक्रिय रूप से कुछ कर सकते हैं।

हम इस ज़िम्मेदारी से आतंकित नहीं हैं। हमें लगता है कि यह सब किया जा सकता है। मैं उम्मीद करता हूँ कि यह कोशिश हमारे बच्चों की शिक्षा के लिए आज़ादी की एक मुहिम शुरू कर सकेगी — हमने अपने आपको जिनके हवाले कर दिया है, वैसी कुछ तानाशाहियों से दूर ले जाने की मुहिम।

यशपाल

आभार

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) का वर्तमान रूप और आकार उन विचारों का परिणाम है जिनकी उत्पत्ति विभिन्न विषयों के प्रतिष्ठित विद्वानों, प्रधानाध्यापकों, शिक्षकों, अभिभावकों, गैर-सरकारी संस्थानों के प्रतिनिधियों, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के सदस्यों और विभिन्न स्तरों पर मौजूद अन्य पणधारियों के गहन विमर्श से हुई। इस दस्तावेज़ ने राज्य शिक्षा सचिवों से, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों के निदेशकों से और क्षेत्रीय संस्थानों में आयोजित गोष्ठियों के प्रतिभागियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त किया। निजी स्कूलों और केंद्रीय विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों/प्रधानाध्यापिकाओं द्वारा बाँटे गए अनुभवों और देशभर के ग्रामीण विद्यालयों के शिक्षकों/शिक्षिकाओं द्वारा बताई बातों ने हमारे विचारों को और पैना बनाने में मदद की। हज़ारों लोगों की आवाज़ पत्रों तथा ई-मेल द्वारा हम तक पहुँची। विद्यार्थियों, अभिभावकों, तथा जनता की आवाज़ ने बहुलतावादी दृष्टिकोण को समझने में हमारी मदद की।

इस दस्तावेज़ को उन सृजनात्मक सुझावों और अनुबोधक टिप्पणियों के उदार प्रवाह से भी असीम लाभ हुआ है जो राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना समिति तथा उच्च स्तरीय समितियों के सदस्यों ने दी थी। इन समितियों में कार्यकारिणी समिति, सामान्य परिषद् एवं केंद्रीय शिक्षा सलाहाकार बोर्ड शामिल हैं। राज्य सरकारों से जुलाई-अगस्त 2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के प्रारूप पर विमर्श करने के लिए कार्यशालाएँ आयोजित करने का विशेष आग्रह किया गया था। हम विभिन्न राज्यों द्वारा भेजी गई रपटों के लिए बहुत आभारी हैं। हम अजीम प्रेम जी फाउंडेशन के भी आभारी हैं जिन्होंने मध्य प्रदेश और राजस्थान आदि की सरकारों के साथ मिल कर संगोष्ठी आयोजित की। केरल शास्त्र साहित्य परिषद् (त्रिशूर), ऑल इंडिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क (त्रिशूर), भारत ज्ञान विज्ञान समिति (नयी दिल्ली), सीमैट (पटना), द कंसर्न्ड फॉर वर्किंग चिल्ड्रेन (बेंगलुरु), शैक्षिक समेकित विकास ट्रस्ट (राँची), कोशिश चैरिटेबल ट्रस्ट (पटना), और दिगंतर (जयपुर) ने भी पाठ्यचर्या के प्रारूप पर चर्चाएँ आयोजित कीं। दि काउंसिल फॉर इंडियन सर्टिफिकेट एक्ज़ामिनेशन (नयी दिल्ली), केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (नयी दिल्ली), राजकीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, स्कूली शिक्षा बोर्ड परिषद् (भारत, नयी दिल्ली) ने हमारे विचारों को स्पष्ट रूप से गठित करने में सक्रिय मदद की। अकादमिक स्टाफ कॉलेज ऑफ इंडिया (हैदराबाद), होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन (मुंबई), जादवपुर विश्वविद्यालय (कोलकाता), अली यावर जंग बधिर राष्ट्रीय संस्थान (मुंबई), मानसिक स्वास्थ्य का राष्ट्रीय संस्थान (सिंकदराबाद), एम. वी. फाउंडेशन (सिंकदराबाद), सेवाग्राम (वर्धा), बाल विकास एवं सहयोग राष्ट्रीय संस्थान (गुवाहाटी), राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (तिरुवनन्तपुरम), अंग्रेज़ी एवं विदेशी भाषाओं का केंद्रीय संस्थान (हैदराबाद), भारतीय भाषाओं का केंद्रीय संस्थान (मैसूर), नेशनल

इंस्टीट्यूट ऑफ डिज़ाइन (अहमदाबाद), एस.एम.वाई.एम. समिति (लोनावला, पुणे), नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी (शिलांग), डी. एस.ई.आर.टी. (बेंगलुरु), आई.यू.सी.ए.ए. (पुणे), पर्यावरण शिक्षा केंद्र (अहमदाबाद) एवं विजय टीचर्स कॉलेज (बेंगलुरु) के प्रति हम पाठ्यचर्या पर सभाएँ आयोजित करने के लिए आभारी हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 का अनुवाद संविधान की आठवीं अनुसूची में दी गईं सभी भाषाओं में किया गया है। डॉ. डी. बरकताकी (असमी), श्री देवाशीष सेनगुप्ता (बंगाली), डॉ. अनिल बोरो (बोड़ो), प्रो. वीणा गुप्ता (डोगरी), श्री कश्यप मनकोडी (गुजराती), श्रीमती प्रगति सक्सेना एवं श्री प्रभात रंजन (हिंदी), श्री एस. एस. यदुराजन (कन्नड़), डॉ. सोमनाथ रैना (कश्मीरी), श्री दामोदर घानेकर (कोंकणी), डॉ. नीता झा (मैथिली), श्री के. के. कृष्ण कुमार (मलयालम), श्री टी. सुरजीत सिंह थोकचोम (मणिपुरी), डॉ. दत्ता देसाई (मराठी), डॉ. खगेन सर्मा (नेपाली), डॉ. मदन मोहन प्रधान (उड़िया), श्री रणजीत सिंह रंगीला (पंजाबी), श्री दत्ता भूषण पोलकन (संस्कृत), श्री सुबोध हंसदा (संथाली), डॉ. के. पी. लेखवाणी (सिंधी), श्री ए. वलिनायगम (तमिल), श्री वी. बालासुब्रमण्यम (तेलुगु), एवं डॉ. नज़ीर हुसैन (उर्दू) का हम अनुवाद करने के लिए शुक्रिया अदा करते हैं। हम श्री राघवेंद्र, श्रीमती रितु, डॉ. अपूर्वानंद, सुश्री लतिका गुप्ता, डॉ. माधवी कुमार, डॉ. मंजुला माथुर, डॉ. लता पांडेय, सुश्री इंदु कुमार, सुश्री पूर्वा कुशवाहा और सुश्री रीमा राजपाल का हिंदी अनुवाद के संपादन में मदद करने के लिए धन्यवाद देते हैं। श्री हर्ष सेठी और श्रीमती मालिनी सूद को पांडुलिपि (अंग्रेजी) का सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए धन्यवाद देते हैं और श्री नसीरुद्दीन खान और डॉ. संध्या साहू को पांडुलिपि को पढ़कर सुझाव देने के लिए शुक्रिया अदा करते हैं। इस दस्तावेज़ की रूपरेखा और ढाँचा तैयार करने के लिए सुश्री श्वेता राव का, आवरण पृष्ठ और कुछ तस्वीरों के लिए श्री रॉबिन बैनर्जी का और सी.आई.ई.टी. के श्री आर. सी. दास का भी तस्वीरों के लिए आभार व्यक्त करते हैं। परिषद् की वेबसाइट पर पाठ्यचर्या की रूपरेखा डालकर उसके वितरण में सहायता के लिए कंप्यूटर शिक्षा एवं प्रौद्योगिकीय सहायता विभाग के साथियों का तथा प्रकाशन विभाग का दस्तावेज़ को उसका वर्तमान आकार देने के लिए धन्यवाद करते हैं। हम श्री आर. के. लक्ष्मण का उनके दो कार्टून (अध्याय एक और तीन में) छापने की अनुमति देने के लिए तहे दिल से आभार व्यक्त करते हैं।

किसी भी अर्थ में यह सूची समग्र नहीं है और हम उन सभी के कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस दस्तावेज़ के बनने में सहयोग दिया।

सार संक्षेप

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की कार्यकारिणी ने 14 एवं 19 जुलाई, 2004 की बैठकों में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को संशोधित करने का निर्णय लिया। यह निर्णय माननीय मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा लोकसभा में दिए गए इस वक्तव्य के अनुसरण में लिया गया कि परिषद् को यह संशोधन करना चाहिए। इसी क्रम में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा सचिव ने परिषद् के निदेशक को एक पत्र लिखा। पत्र में उन्होंने 1993 की 'शिक्षा बिना बोझ के' रपट की रोशनी में विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.एस.ई)-2000 की समीक्षा करने की आवश्यकता व्यक्त की। इन्हीं निर्णयों के संदर्भ में प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय संचालन समिति और इक्कीस राष्ट्रीय फोकस समूहों का गठन किया गया। इन समितियों में उच्च शिक्षा संस्थानों के प्रतिनिधि, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अकादमिक सदस्य, स्कूलों के शिक्षक और गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि सदस्यों के रूप में शामिल हुए। देश के हर हिस्से में इस मुद्दे पर विचार-विमर्श एवं चिंतन किया गया। इसके साथ ही मैसूर, अजमेर, भुवनेश्वर, भोपाल और शिलांग में स्थित परिषद् के क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में भी क्षेत्रीय संगोष्ठियों का आयोजन किया गया। राज्यों के सचिवों, राज्यों की शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों और परीक्षा बोर्ड के सदस्यों से विचार-विमर्श किया गया। ग्रामीण शिक्षकों से सुझाव लेने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय समाचारपत्रों में विज्ञापन दिए गए जिससे लोग नयी पाठ्यचर्या के बारे में अपनी राय दे सकें और बड़ी तादाद में लोगों की प्रतिक्रियाएँ आईं।

संशोधित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज़ का आरंभ रवीन्द्रनाथ टैगोर के निबंध ''सभ्यता और प्रगति'' के एक उद्धरण से होता है जिसमें कविगुरु हमें याद दिलाते हैं कि सृजनात्मकता और उदार आनंद बचपन की कुंजी हैं और नासमझ वयस्क संसार द्वारा उनकी विकृति का खतरा है। आरंभिक अध्याय में स्वतंत्रता के बाद किए गए पाठ्यचर्या में सुधार के प्रयासों की चर्चा की गई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई), 1986 में यह प्रस्तावित किया गया था कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था विकसित करने का एक साधन होना चाहिए जो भारतीय संविधान में राष्ट्रीय निर्माण के 'दर्शन' को अपनी आधार भूमि माने। कार्ययोजना (पी.ओ.ए.), 1992 ने प्रासंगिकता, लचीलेपन और गुणवत्ता के तत्वों पर ज़ोर देते हुए इसके दायरे को थोड़ा और विस्तृत किया।

सामाजिक न्याय और समानता के संवैधानिक मूल्यों पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक और बहुलतावादी समाज के आदर्श से प्रेरणा लेते हुए इस दस्तावेज़ में शिक्षा के कुछ व्यापक उद्देश्य चिह्नित किए गए हैं। इनमें शामिल हैं विचार और कर्म की स्वतंत्रता, दूसरों की भलाई और भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता, नयी स्थितियों

का लचीलेपन और रचनात्मक तरीके से सामना करना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी की प्रवृत्ति और आर्थिक प्रक्रियाओं तथा सामाजिक बदलाव में योगदान देने के लिए काम करने की क्षमता। अगर शिक्षा को जीने के लोकतांत्रिक तरीकों को सुदृढ़ करना है तो उसे स्कूल में जाने वाली पहली पीढ़ी की उपस्थिति का भी ध्यान रखना ही होगा जिसका स्कूल में बने रहना उस संविधान संशोधन के चलते अनिवार्य हो गया है जिसने आरंभिक शिक्षा को हर बच्चे का मौलिक अधिकार बना दिया है। संविधान के इस संशोधन से हम पर यह ज़िम्मेदारी आ गई है कि हम सारे बच्चों को जाति, धर्म संबंधी अंतर, लिंग और असमर्थता संबंधी चुनौतियों से निरपेक्ष रहते हुए स्वास्थ्य, पोषण और समावेशी स्कूली माहौल मुहैया कराएँ जो उनको शिक्षा ग्रहण में मदद पहुँचाएँ तथा उन्हें सशक्त बनाएँ। हमारे शैक्षिक उद्देश्यों और शिक्षा की गुणवत्ता में आज गहरी विकृति आ गई है, इसका प्रमाण है यह तथ्य कि शिक्षा बच्चों और उनके माँ-बाप के लिए तनाव और बोझ का कारण बन गई है। इस विकृति को दुरुस्त करने के लिए पाठ्यचर्या के इस दस्तावेज़ ने पाठ्यचर्या निर्माण के पाँच निर्देशक सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा है : (1) ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना; (2) पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना; (3) पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि पाठ्यपुस्तक-केंद्रित बन कर रह जाए; (4) परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना; और (5) एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों।

आरंभिक कक्षाओं के दौरान हमारे सारे शैक्षणिक प्रयास इस बात पर बहुत निर्भर करते हैं कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा (ई.सी.ई.) की योजना पेशेवर दक्षता के साथ बनाई जाए और उसका सार्थक विस्तार किया जाए। दरअसल आरंभिक स्कूली पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में कोई भी सुधार पूर्व प्राथमिक शिक्षा (ई.सी.ई.) के बहुपरिचित सिद्धांतों की रोशनी में ही किया जाना चाहिए। अध्याय 2 में ज्ञान की प्रकृति और बच्चों की सीखने की कार्यनीतियों पर चर्चा की गई है जो अध्याय 3 में दिए गए उन सुझावों का सैद्धांतिक आधार निरूपित करती है जो पाठ्यचर्या के विभिन्न क्षेत्रों के लिए दिए गए हैं। यह तथ्य कि बच्चा ज्ञान का सृजन करता है, इसका निहितार्थ है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाएँ कि वे बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप कक्षायी अनुभव आयोजित करें, ताकि सारे बच्चों को अवसर मिल पाएँ। शिक्षण का उद्देश्य बच्चे के सीखने की सहज इच्छा और युक्तियों को समृद्ध करना होना चाहिए। ज्ञान को सूचना से अलग करने की ज़रूरत है और शिक्षण को एक पेशेवर गतिविधि के रूप में पहचानने की ज़रूरत है न कि तथ्यों के रटने और प्रसार के प्रशिक्षण के रूप में। सक्रिय गतिविधि के जरिए ही बच्चा अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करता है। इसलिए प्रत्येक साधन का उपयोग इस तरह किया जाना चाहिए कि बच्चों को खुद

को अभिव्यक्त करने में, वस्तुओं का इस्तेमाल करने में, अपने प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश की खोजबीन करने में और स्वस्थ रूप से विकसित होने में मदद मिले। अगर बच्चों के कक्षा के अनुभवों को इस तरह आयोजित करना हो जिससे उन्हें ज्ञान सृजित करने का अवसर मिले तो हमारी स्कूली व्यवस्था में व्यापक व्यवस्थागत सुधारों की ज़रूरत होगी (पाँचवाँ अध्याय) और इसकी भी कि स्कूल के विषयों और पाठ्यचर्या के क्षेत्रों की फिर से संकल्पना की जाए (तीसरा अध्याय) और स्कूल के लोकाचार की गुणवत्ता को सुधारने के लिए संसाधन जुटाए जाएँ (चौथा अध्याय)।

स्कूली पाठ्यचर्या के चार सुपरिचित क्षेत्रों- भाषा, गणित, विज्ञान और समाज विज्ञान में - महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव दिया गया है। इस दृष्टि से कि शिक्षा आज की और भविष्य की ज़रूरतों के लिए ज्यादा प्रासंगिक बन सके और बच्चों को उस दबाव से मुक्त किया जा सके जो वे आज झेल रहे हैं। यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज़ इस बात की सिफारिश करता है कि विषयों के बीच की दीवारें नीची कर दी जाएँ ताकि बच्चों को ज्ञान का समग्र आनंद मिल सके और किसी चीज़ को समझने से मिलने वाली खुशी हासिल हो सके। इसके साथ यह भी सुझाया गया है कि पाठ्यपुस्तक और दूसरी सामग्री की बहुलता हो, जिनमें स्थानीय ज्ञान और पारंपरिक कौशल शामिल हो सकते हैं और बच्चों के घर और सामुदायिक परिवेश से जीवंत संबंध बनाने वाले स्फूर्तिदायक स्कूली माहौल को सुनिश्चित किया जा सके। भाषा में त्रिभाषा फार्मूले को लागू करने के फिर से प्रयास का सुझाव दिया गया है जिसमें आदिवासी भाषाओं सहित बच्चों की मातृभाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृति देने पर ज़ोर है। प्रत्येक बच्चे में बहुभाषिक प्रवीणता विकसित करने के लिए भारतीय समाज के बहुभाषिक चरित्र को एक संसाधन के रूप में देखना चाहिए जिसमें अंग्रेज़ी में प्रवीणता भी शामिल है। यह तभी मुमकिन है जब भाषा का पुख्ता शिक्षाशास्त्र मातृभाषा के उपयोग पर आधारित हो। पढ़ना, लिखना, बोलना और सुनना — ये क्रियाएँ पाठ्यचर्या के सभी क्षेत्रों में बच्चों की प्रगति में भूमिका निभाती हैं और इन्हें पाठ्यचर्या की योजना का आधार होना चाहिए। आरंभिक कक्षाओं के पूरे दौर में पढ़ने पर ज़ोर देना ज़रूरी है जिससे हर बच्चे को स्कूली शिक्षा का ठोस आधार मिल सके।

गणित की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे बच्चों के वे संसाधन समृद्ध हों जो चिंतन और तर्क में, अमूर्तनों की संकल्पना करने और उनका व्यवहार करने में, समस्याओं को सूत्रबद्ध करने और सुलझाने में उनकी सहायता करें। उद्देश्यों का यह व्यापक फलक उस प्रासंगिक और अर्थपूर्ण गणित को पढ़ाकर तय किया जा सकता है जो बच्चों के अनुभवों में गुँथी हुई हो। गणित में सफलता को हर बच्चे के अधिकार की तरह देखा जाना चाहिए। इसके लिए गणित के दायरे को और विस्तृत करने की ज़रूरत है और इसे दूसरे विषयों से जोड़ने की ज़रूरत है। हर स्कूल को

कंप्यूटर, हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और कनैक्टिविटी मुहैया कराने जैसी ढाँचागत चुनौतियों का सामना करने की ज़रूरत है।

विज्ञान के शिक्षण में इस तरह की तब्दीली की जानी चाहिए कि यह हर बच्चे को अपने रोज़ के अनुभवों को जाँचने और उनका विश्लेषण करने में सक्षम बनाए। परिवेश संबंधी सरोकारों और चिंताओं पर हर विषय में ज़ोर दिए जाने की ज़रूरत है और यह ढेरों गतिविधियों और बाहरी दुनिया पर की गई परियोजनाओं के द्वारा होना चाहिए। इस प्रकार की परियोजना के माध्यम से निकलने वाली सूचनाओं और समझ के आधार पर भारतीय पर्यावरण को लेकर एक सर्वसुलभ और पारदर्शी आंकड़ा-संग्रह तैयार हो सकता है जो अत्यन्त उपयोगी शैक्षणिक संसाधन साबित होगा। यदि विद्यार्थियों की परियोजनाएँ सुनियोजित हों तो उनसे ज्ञान सृजित होगा। बाल विज्ञान कांग्रेस की तर्ज पर एक सामाजिक आंदोलन की कल्पना की जा सकती है जिससे पूरे देश में अन्वेषण की शिक्षा को प्रोत्साहन मिलेगा जो बाद में पूरे दक्षिण एशिया में फैल सकता है।

सामाजिक विज्ञान में पाठ्यचर्या के इस दस्तावेज़ द्वारा प्रस्तावित उपागम ज्ञान के क्षेत्रों की विशिष्ट सीमाओं को पहचानता है और साथ ही 'पानी' जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों के लिए समाकलन पर ज़ोर देता है। हाशिए पर ढकेल दिए गए समूहों की दृष्टि से समाज विज्ञान के अध्ययन का प्रस्ताव करते हुए नज़रिए में एक पूरी तब्दीली की सिफारिश की गई है। सामाजिक विज्ञान के सारे पहलुओं में जेंडर के संदर्भ में न्याय और अनुसूचित जाति तथा जनजाति के मसलों को लेकर जागरूकता तथा अल्पसंख्यक संवेदनशीलता के प्रति सजगता होनी चाहिए। नागरिक शास्त्र को राजनीति विज्ञान के रूप में ढालना चाहिए और बच्चों के अतीत और नागरिक अस्मिता की अवधारणा पर इतिहास के प्रभाव के महत्त्व को पहचानना चाहिए।

पाठ्यचर्या का यह दस्तावेज़ चार पाठ्यचर्यी क्षेत्रों की तरफ ध्यान आकर्षित करता है जो इस प्रकार हैंः

काम, कला और पारंपरिक दस्तकारियाँ, स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा, एवं शांति। काम के संदर्भ में आरंभिक स्तर से शुरू करते हुए काम को अधिगम से जोड़ने के लिए कुछ बुनियादी कदम सुझाए गए हैं। उनके पीछे आधार यह है कि ज्ञान काम को अनुभव में रूपांतरित कर देता है और सहयोग, सृजनात्मकता और आत्म-निर्भरता जैसे मूल्यों की उत्पत्ति करता है। यह ज्ञान और रचनात्मकता के नए रूपों की प्रेरणा भी देता है। वरिष्ठ कक्षाओं में स्कूल के बाहर के संसाधनों को औपचारिक मान्यता देने की सिफारिश है ताकि उन बच्चों को लाभ पहुँच सके जो आजीविका से सीधे जुड़ी हुई शिक्षा का चुनाव करते हैं। स्कूल के बाहर की आजीविका संस्थाओं को औपचारिक मान्यता की ज़रूरत है जिससे वे बच्चों को ऐसा स्थान उपलब्ध करवाएँ जहाँ बच्चे औज़ारों और दूसरे साधनों से काम करें। दस्तकारियों के मानचित्रीकरण की सिफारिश की गई है जिससे उन इलाकों की पहचान की जा सके जहाँ बच्चों को स्थानीय कारीगरों के सहारे दस्तकारियों में प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

हर स्तर पर विषय के रूप में कला को जगह दिए जाने की सिफारिश की गई है जिसमें गायन, नृत्य, दृश्य कलाएँ और नाटक चारों पहलू शामिल हैं। पर यहाँ भी ज़ोर परस्पर-क्रियात्मक पद्धतियों पर होना चाहिए न कि प्रशिक्षण पर। क्योंकि कला शिक्षण का उद्देश्य सौंदर्यात्मक और वैयक्तिक चेतना को प्रोत्साहित करना है और विविध रूपों में खुद को व्यक्त करने की क्षमता को बढ़ावा देना है। भारतीय पारंपरिक दस्तकारियाँ आर्थिक और सौंदर्यपरक मूल्यों के अर्थ में स्कूली शिक्षा के लिए प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण हैं यह तथ्य पहचाना जाना चाहिए।

स्कूलों में बच्चे की कामयाबी उसके पोषण और सुनियोजित शारीरिक गतिविधि के कार्यक्रमों पर निर्भर होती है। इसीलिए ज़रूरी संसाधनों और स्कूल के समय को मध्याह्न भोजन कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाने में लगाना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रयासों की ज़रूरत होगी कि स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में शाला पूर्व अवस्था से लेकर आगे तक लड़कों की तरह ही लड़कियों की ओर भी उतना ही ध्यान दिया जाए।

पूरी दुनिया में बढ़ती असहिष्णुता और मतभेदों को सुलझाने के तरीके के रूप में हिंसा की ओर बढ़ते रुझान को देखते हुए इस बात की सिफारिश की गई है कि शांति को राष्ट्रीय निर्माण की पूर्व शर्त और एक सामाजिक संस्कार के रूप में समग्र मूल्य संरचना के तौर पर स्वीकार किया जाए जिसकी आज अत्यधिक प्रासंगिकता है। एक लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण संस्कृति में बच्चों के समाजीकरण के लिए शांति के लिए शिक्षा की संभावनाओं को विभिन्न गतिविधियों के द्वारा हर स्तर पर, और हर विषय में विषयों के विवेकपूर्ण चुनाव के जरिए साकार किया जा सकता है। शांति के लिए शिक्षा को शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या में शामिल करने की सिफारिश की गई है।

स्कूल के माहौल को पाठ्यचर्या के एक पहलू की तरह देखा गया है क्योंकि यह बच्चों को शिक्षा के उद्देश्यों और सीखने की उन युक्तियों के लिए तैयार करती है जो स्कूल में सफलता के लिए ज़रूरी हैं। एक संसाधन के रूप में स्कूल के समय को लचीले ढंग से नियोजित किए जाने की ज़रूरत है। स्थानीय स्तर पर नियोजित लचीले स्कूली कैलेण्डर और समय सारणी की सिफारिश की गई है ताकि परियोजना और प्राकृतिक और पारंपरिक धरोहर वाले स्थलों के लिए भ्रमण जैसी विविध प्रकार की गतिविधियों के लिए मौका मिल सके। इस बात की कोशिश करनी होगी कि बच्चों के लिए सीखने के अधिक संसाधन तैयार किए जाएँ, खासकर स्कूल और शिक्षक के लिए संदर्भ पुस्तकालय हेतु स्थानीय भाषाओं में किताबें और संदर्भ सामग्रियाँ उपलब्ध हों और बच्चों की अंतःक्रियात्मक तकनीक तक पहुँच हो न कि प्रसारित तकनीक तक। यह दस्तावेज़ माध्यमिक स्तर पर विकल्पों में बहुलता और लचीलेपन के महत्त्व पर ज़ोर देता है और बच्चों को बंद खाँचों में डाल देने की स्थापित प्रवृत्ति को हतोत्साहित करता है क्योंकि इससे बच्चों के, खास कर ग्रामीण इलाकों के बच्चों के अवसर सीमित हो जाते हैं।

व्यवस्थागत सुधारों के संदर्भ में यह दस्तावेज़ पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ करने पर बल देता है। गुणवत्ता और जवाबदेही बढ़ाने के माध्यम के रूप में

सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए एक अधिक सुनियोजित रुख अपनाकर यह किया जा सकता है। पर्यावरण से जुड़ी विविध स्कूल-आधारित परियोजनाएँ पंचायती राज संस्थाओं के लिए एक ऐसा ज्ञान भण्डार हो सकतीं हैं जिसके आधार पर वे स्थानीय पर्यावरण की बेहतर साज-संभाल कर उसे पुनर्जीवित कर सकते हैं। गुणवत्ता के स्तर को ऊपर उठाने के लिए स्कूली स्तर पर अकादमिक नियोजन और नेतृत्व ज़रूरी है और खण्ड एवं संकुल स्तर पर भूमिकाओं में विभाजन करना बहुत ही आवश्यक है। चट्टोपाध्याय कमीशन (1984) द्वारा सुझाए गए पेशेवर मानकों में ढीलापन लाने की हाल की प्रवृत्ति को रोकने के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण में क्रांतिकारी परिवर्तन की ज़रूरत है। सेवापूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों को ज्यादा लंबी अवधि का तथा अधिक समग्रता लिए हुए होना चाहिए ताकि बच्चों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने के लिए पर्याप्त अवसर और स्कूलों में इंटर्नशिप के द्वारा शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों को व्यवहार से जोड़ने के पूरे मौके मिल सकें।

पाठ्यचर्या को नवीकृत करने के लिए सबसे ज़रूरी व्यवस्थागत कदम होगा परीक्षाओं में सुधार जिससे खासकर दसवीं और बारहवीं कक्षा में बच्चों और उनके माता-पिता पर बढ़ते मनोवैज्ञानिक दबाव की गहराती समस्याओं का कोई समाधान निकाला जा सके। इसके लिए जो विशेष कदम उठाने ज़रूरी हैं वे हैं प्रश्न पत्र के स्वरूप का पूरा परिवर्तन, जिससे तर्कशक्ति और रचनात्मक क्षमताओं को आकलन का आधार बनाया जाए न कि रटने की क्षमता को। साथ ही पारदर्शिता और आंतरिक आकलन को बढ़ावा देते हुए परीक्षाओं को कक्षा की गतिविधियों से भी जोड़ने की ज़रूरत है। आज प्रचलित पास और फेल की सामान्यीकृत श्रेणियों की कमी को दूर करने के लिए ज़रूरी होगा कि ऐसी युक्तियाँ खोजी जाएँ जो बच्चों को अलग-अलग स्तर की उपलब्धियों का विकल्प लेने को प्रेरित कर सकें। बोर्ड-पूर्व परीक्षाओं पर अतिरिक्त ज़ोर को भी हतोत्साहित किए जाने की ज़रूरत है।

अन्ततः यह दस्तावेज़ स्कूली व्यवस्था और दूसरे नागरिक समूहों के बीच सहभागिता की सिफारिश करता है जिनमें गैर-सरकारी संगठन और शिक्षक संगठन भी शामिल हैं। पहले से ही मौजूद नवाचारों के अनुभवों को मुख्य धारा का स्वरूप देने की ज़रूरत है। आज ज़रूरत इस बात की है कि आरंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण में निहित चुनौतियों के प्रति सजगता को राज्य और बच्चों को लेकर काम कर रही सारी एजेंसियों के बीच एक व्यापक सहभागिता का विषय बनाया जाए और पहले से मौजूद नवाचारों के अनुभवों को मुख्यधारा में लाया जाए।

राष्ट्रीय संचालन समिति के सदस्य

1. प्रो. यशपाल *(अध्यक्ष)*
पूर्व अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
11 बी, सुपर डीलक्स फ्लैट्स
सेक्टर – 15 ए, नोएडा
उत्तर प्रदेश

2. आचार्य राममूर्ति
अध्यक्ष
श्रम भारती, खादीग्राम
पोस्ट – खादीग्राम
जिला – जमुई – 811313
बिहार

3. डॉ. शैलेश ए. शिराली
प्राचार्य
अंबर वैली रेसीडेंशियल स्कूल
के.एम. रोड़, मुगथीहल्ली
चिकमगलूर – 577101
कर्नाटक

4. श्री रोहित धनकर
निदेशक
दिगंतर, टोडी रमजानीपुरा
खोनागोरियन रोड
पोस्ट – जगतपुरा
जयपुर – 302025
राजस्थान

5. श्री पोरोमेश आचार्य
(*पूर्व सदस्य* – शिक्षा आयोग, पश्चिम बंगाल)
एल/एफ 9, कुस्थिया रोड
गवर्नमेंट हाउसिंग इस्टेट
अवंतिका आवासम
कोलकाता – 700039
पश्चिम बंगाल

6. डॉ. मीना स्वामीनाथन
मानद निदेशक
उत्तरादेवी सेंटर फॉर जेंडर एंड डेवलपमेंट
एम.एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन
तीसरा क्रॉस रोड
तारामनी इंस्टीट्यूशनल एरिया
चेन्नई – 600113
तमिलनाडु

7. डॉ. पदमा एम. सारंगपाणि
एशोसिएट फैलो
राष्ट्रीय उच्चतर अध्ययन संस्थान
बेंगलुरु – 560012
कर्नाटक

8. प्रो. आर. रामानुजम
इंस्टीट्यूट ऑफ़ मैथेमैटिकल साइंस
चौथा क्रॉस, सी.आई.टी. कैंपस
थारामनी, चेन्नई – 600113
तमिलनाडु

9. प्रो. अनिल सदगोपाल
(शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)
ई–8/29 ए, सहकार नगर
भोपाल – 462039
मध्य प्रदेश

10. प्रो. जी. रविन्द्रा
प्राचार्य
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (एन.सी.ई.आर.टी.)
मानस गंगोत्री
मैसूर – 570006
कर्नाटक

11. प्रो. दमयंती जे. मोदी
(*पूर्व विभागाध्यक्ष*, शिक्षा विभाग, भावनगर विश्वविद्यालय)
2209, ए/2, आनंदधारा
बदोदरिया पार्क के नज़दीक, हिल ड्राइव
भावनगर – 364002,
गुजरात

12. सुश्री सुनीला मसीह
शिक्षिका
मित्र जी.एच.एस. स्कूल
सोहागपुर, पोस्ट
जिला – होशंगाबाद – 461771
मध्य प्रदेश

13. सुश्री हर्ष कुमारी
मुख्याध्यापिका
सी.आई.ई. एक्सपेरिमेंटल बेसिक स्कूल
शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली – 110007

14. श्री त्रिलोचन दास गर्ग
प्राचार्य
केन्द्रीय विद्यालय नं. 1,
भटिंडा – 151 001
पंजाब

15. प्रो. अरविंद कुमार
केन्द्र निदेशक
होमी भाभा सेंटर फोर साइंस एजुकेशन
वी.एन. पुराव मार्ग, मानखुर्द
मुंबई – 400088
महाराष्ट्र

16. प्रो. गोपाल गुरु
सेन्टर फॉर पोलिटिकल स्टडीज
सामाजिक विज्ञान संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली – 110067

17. डॉ. रामचन्द्र गुहा
22 ए, ब्रन्टन रोड
बेंगलुरु – 560025
कर्नाटक
18. डॉ बी.ए. डाबला
प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष
सामाजिक कार्य और समाजशास्त्र विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर – 190006
जम्मू और कश्मीर
19. श्री अशोक वाजपेयी
(*पूर्व कुलपति*, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय)
सी–60, अनुपम अपार्टमेंट्स
बी–13, वसुंधरा एंकलेव
दिल्ली – 110096
20. प्रो. वाल्सन थाम्पू
सेंट स्टीफन हॉस्पिटल
जी–3, प्रशासनिक ब्लॉक
तीस हज़ारी
दिल्ली – 110054
21. प्रो. शांता सिन्हा
निदेशक
एम. वेंकटरंगैया फाउंडेशन
201, नारायण अपार्टमेंट्स
वेस्ट मैरेडपल्ली, सिकंदराबाद – 500026
आंध्र प्रदेश
22. डॉ. विजया मूले
संस्थापक प्राचार्या, शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र, एन.सी.ई.आर.टी.
अध्यक्ष, इंडिया डॉक्यूमेंटरी प्रोड्यूसर्स एशोसिएशन
बी 42, फ्रैंड्स कॉलोनी (पश्चिम)
नयी दिल्ली – 110065
23. प्रो. मृणाल मीरी
कुलपति, नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी
पोस्ट – नेहू कैंपस
माउक्यानरोह उमशिंग
शिलांग – 793022
मेघालय
24. प्रो. तलत अज़ीज़
आई.ए.एस.ई. शिक्षा निकाय
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, जामिया नगर, नयी दिल्ली – 110025
25. प्रो. सविता सिन्हा
विभागाध्यक्ष, डी.ई.एस.एस.एच
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली – 110016
26. प्रो. के.के. वशिष्ठ
विभागाध्यक्ष, डी.ई.ई.
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली – 110016
27. डॉ. संध्या परांजपे
रीडर, डी.ई.ई.
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली – 110016
28. प्रो. सी.एस. नागराजु
विभागाध्यक्ष, डी.ई.आर.पी.पी.
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली – 110016
29. डॉ. ज्योत्सना तिवारी
प्रवक्ता, डी.ई.एस.एस.एच.
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली – 110016
30. प्रो. एम. चन्द्रा
विभागाध्यक्ष, डी.ई.एस.एम.
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली – 110016
31. डॉ. अनिता जुल्का
प्रवाचक, डी.ई.जी.एस.एन.
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली – 110016
32. प्रो. कृष्ण कुमार
निदेशक
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली – 110016
33. श्रीमती अनिता कौल
सचिव
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली – 110016
34. श्री अशोक गांगुली
अध्यक्ष, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड
शिक्षा केन्द्र, 2, कम्युनिटी सेंटर
प्रीत विहार, दिल्ली – 110092
35. प्रो. एम. ए. ख़ादर (*सदस्य सचिव*)
विभागाध्यक्ष, पाठ्यचर्या समूह
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली –110016

पाठ्यचर्या समूह (एन.सी.ई.आर.टी.) के सदस्यः

डॉ. रंजना अरोड़ा
डॉ. अमरेंद्र बेहेरा
श्री आर. मेघनाथन

विषय सूची

प्राक्कथन iii

आभार v

सार संक्षेप vii

राष्ट्रीय संचालन समिति के सदस्य xiii

1. परिप्रेक्ष्य 1

1.1 परिचय 1

1.2 पश्चावलोकन 3

1.3 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 4

1.4 मार्गदर्शक सिद्धांत 5

1.5 गुणवत्ता के आयाम 9

1.6 शिक्षा का सामाजिक संदर्भ 10

1.7 शिक्षा के लक्ष्य 11

2. सीखना और ज्ञान 14

2.1 सक्रिय विद्यार्थी की प्राथमिकता 15

2.2 विद्यार्थी को संदर्भ में रखना 15

2.3 विकास और सीखना 16

2.4 पाठ्यचर्या एवं व्यवहार के लिए निहितार्थ 20

2.4.1 ज्ञान सृजन के लिए अध्यापन 20

2.4.2 अंतःक्रिया का मूल्य 21

2.4.3 शैक्षिक अनुभवों की रूपरेखा बनाना 23

2.4.4 नियोजन के उपागम 24

2.4.5 विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र 26

2.5 ज्ञान एवं समझ 28

2.5.1 बुनियादी क्षमताएँ 29

2.5.2 व्यवहार में ज्ञान 30

2.5.3 समझ के रूप 31

2.6 ज्ञान को फिर से रचना 33

2.7 बच्चों का ज्ञान और स्थानीय ज्ञान 34

2.8 स्कूली ज्ञान और समुदाय 37

2.9 कुछ विकासमूलक विचार 38

3. पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्थाएँ और आकलन 40

3.1 भाषा 41

3.1.1 भाषा शिक्षा 41

3.1.2 घरेलू/प्रथम भाषा(एँ) या मातृभाषा शिक्षा 42

3.1.3 द्वितीय भाषा सीखना 44

3.1.4 पढ़ना–लिखना सीखना 45

3.2 गणित 48

3.2.1 स्कूली गणित का दर्शन 49

3.2.2 पाठ्यचर्या 51

3.2.3 कंप्यूटर विज्ञान 52

3.3 विज्ञान 53

3.3.1 विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या 55

3.3.2 दृष्टिकोण 56

3.4 सामाजिक विज्ञान 57

3.4.1 प्रस्तावित ज्ञानमीमांसात्मक ढाँचा 58

3.4.2 पाठ्यचर्या का नियोजन 59

3.4.3 शिक्षाशास्त्र और संसाधनों के अभिगम 61

3.5 कला शिक्षा 62

3.6 स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा 64

3.6.1 रणनीतियाँ 65

	3.7	काम और शिक्षा	66
	3.8	शांति के लिए शिक्षा	69
		3.8.1 रणनीतियाँ	70
	3.9	आवास और सीखना	72
	3.10	अध्ययन और आकलन की योजनाएँ	73
		3.10.1 प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा	74
		3.10.2 आरंभिक शिक्षा	76
		3.10.3 माध्यमिक शिक्षा	77
		3.10.4 उच्च माध्यमिक शिक्षा	78
		3.10.5 मुक्त विद्यालय और सेतु विद्यालय	80
	3.11	आकलन और मूल्यांकन	81
		3.11.1 आकलन का उद्देश्य	81
		3.11.2 शिक्षार्थियों का आकलन	82
		3.11.3 शिक्षण के क्रम में आकलन	83
		3.11.4 पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र जो अंकों के लिए जाँचे नहीं जा सकते	83
		3.11.5 आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन	84
		3.11.6 स्व–आकलन और प्रतिपुष्टि	85
		3.11.7 वे क्षेत्र जिनके बारे में नए सिरे से सोचने की ज़रूरत है	86
		3.11.8 विभिन्न चरणों में आकलन	87
4.	**विद्यालय एवं कक्षा का वातावरण**		**88**
	4.1	भौतिक वातावरण	89
	4.2	सक्षम बनाने वाले वातावरण का पोषण	92
	4.3	सभी बच्चों की भागीदारी	93
		4.3.1 बच्चों के अधिकार	95
		4.3.2 समावेशन की नीति	96
	4.4	अनुशासन और सहभागी प्रबंधन	98

4.5 अभिभावकों और समुदाय के लिए स्थान 99

4.6 पाठ्यचर्या के स्थल और अधिगम के संसाधन 101

4.6.1 पाठ और पुस्तकें 101

4.6.2 पुस्तकालय 103

4.6.3 शैक्षिक तकनीकी 103

4.6.4 उपकरण और प्रयोगशालाएँ 105

4.6.5 अन्य स्थल एवं अवसर 106

4.6.6 बहुलता और वैकल्पिक सामग्रियों की आवश्यकता 106

4.6.7 संसाधनों का संयोजन एवं उनकी व्यवस्था 107

4.7 समय 108

4.8 शिक्षक की स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता 111

4.8.1 चिंतन और नियोजन के लिए समय 113

5. व्यवस्थागत सुधार 114

5.1 गुणवत्ता को लेकर सरोकार 115

5.1.1 अकादमिक नियोजन और गुणवत्ता प्रबोधन 117

5.1.2 स्कूल प्रबोधन के लिए स्कूलों में अकादमिक नेतृत्व 117

5.1.3 पंचायत और शिक्षा 118

5.2 पाठ्यचर्या नवीकरण के लिए शिक्षक–शिक्षा 120

5.2.1 शिक्षक–शिक्षा : वर्तमान सरोकार 120

5.2.2 शिक्षक का शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण 121

5.2.3 शिक्षक–शिक्षा के कार्यक्रम में बदलाव के कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु 122

5.2.4 सेवाकालीन शिक्षक–शिक्षा और प्रशिक्षण 124

5.2.5 सेवारत शिक्षक–शिक्षा की पहलें और रणनीतियाँ 125

5.3 परीक्षा सुधार 127

5.3.1 पर्चा–निर्धारण, परीक्षा और रपट 128

5.3.2 आकलन में लचीलापन 129

5.3.3 अन्य स्तरों पर बोर्ड परीक्षाएँ 129

5.3.4 प्रवेश परीक्षाएँ 130

5.4 काम–केंद्रित शिक्षा 130

5.4.1 व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण 130

5.5 विचार और व्यवहार में नवाचार 133

5.5.1 पाठ्यपुस्तकों की बहुलता 133

5.5.2 नवाचार को बढ़ावा 134

5.5.3 तकनीकी का उपयोग 135

5.6 नयी साझेदारियाँ 135

5.6.1 गैर–सरकारी संगठन, नागरिक समाज समूह और शिक्षक संगठनों की भूमिका 135

उपसंहार 139

परिशिष्ट I 142

प्रत्येक अध्याय का सारांश

परिशिष्ट II 148

शिक्षा सचिव, भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग द्वारा लिखित पत्र

अनुक्रमणिका 151

"जब मैं बच्चा था तो छोटी-छोटी चीज़ों से अपने खिलौने बनाने और अपनी कल्पना में नए-नए खेल ईजाद करने की मुझे पूरी आज़ादी थी। मेरी खुशी में मेरे साथियों का पूरा हिस्सा होता था; बल्कि मेरे खेलों का पूरा मज़ा उनके साथ खेलने पर निर्भर करता था। एक दिन हमारे बचपन के इस स्वर्ग में वयस्कों की बाज़ार-प्रधान दुनिया से एक प्रलोभन ने प्रवेश किया। एक अंग्रेज़ दुकान से खरीदा गया खिलौना हमारे एक साथी को दिया गया; वह कमाल का खिलौना था — बड़ा और मानो सजीव। हमारे साथी को उस खिलौने पर घमंड हो गया और अब उसका ध्यान हमारे खेलों में इतना नहीं लगता था; वह उस कीमती चीज़ को बहुत ध्यान से हमारी पहुँच से दूर रखता था, अपनी इस खास वस्तु पर इठलाता हुआ। वह अपने अन्य साथियों से खुद को श्रेष्ठ समझता था क्योंकि उनके खिलौने सस्ते थे। मैं निश्चित तौर पर कह सकता हूँ कि अगर वह इतिहास की आधुनिक भाषा का प्रयोग कर सकता तो वह यही कहता कि वह उस हास्यास्पद रूप से श्रेष्ठ खिलौने का स्वामी होने की हद तक हमसे अधिक सभ्य था।

अपनी उत्तेजना में वह एक चीज़ भूल गया — वह तथ्य जो उस वक्त उसे बहुत मामूली लगा था — कि इस प्रलोभन में एक ऐसी चीज़ खो गई जो उसके खिलौने से कहीं श्रेष्ठ थी, एक श्रेष्ठ और पूर्ण बच्चा। उस खिलौने से महज उसका धन व्यक्त होता था, बच्चे की रचनात्मक ऊर्जा नहीं, न ही उसके खेल में बच्चे का आनंद था और न ही उसके खेल की दुनिया में साथियों को खुला निमंत्रण।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर के निबंध 'सभ्यता और प्रगति' से

1.1 परिचय
1.2 पश्चावलोकन
1.3 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा
1.4 मार्गदर्शक सिद्धांत
1.5 गुणवत्ता के आयाम
1.6 शिक्षा का सामाजिक संदर्भ
1.7 शिक्षा के लक्ष्य

अध्याय 1 : परिप्रेक्ष्य

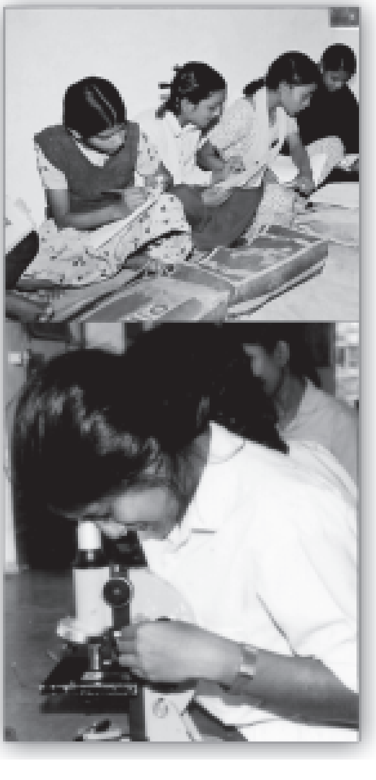

1.1 परिचय

भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र है जिसका इतिहास समृद्ध है और वैविध्य से परिपूर्ण है। इसमें असाधारण रूप से जटिल सांस्कृतिक विविधता और लोकतांत्रिक मूल्यों व सर्वजन कल्याण के लिए प्रतिबद्धता है। वर्ष 1986 में जब शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति को संसद द्वारा स्वीकृति मिली थी, तभी से पाठ्यचर्या पुनर्रूपांकित करने के सभी प्रयासों का उद्देश्य रहा है — शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली की रचना करना। चूँकि देश के बच्चों को शिक्षित करने का कार्य बहुत विशाल व महत्त्वपूर्ण है, इसलिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर हम साथ मिल बैठ कर स्वयं से ये सवाल पूछें, “इस कार्य में व्यस्त हम क्या कर रहे हैं? शिक्षा के नाम पर जो हम बच्चों को उपलब्ध करा रहे हैं, क्या उसमें नयापन लाने का वक्त आ गया है?”

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा प्रणाली की क्या उपलब्धि रही है, यदि हम इस ओर ध्यान दें तो संभवतः हमें कुछ संतोषजनक आंकड़े मिलेंगे। आज हमारे देश में तकरीबन 10 लाख स्कूलों में 2025 लाख बच्चों को पढ़ाने का काम लगभग 55 लाख

शिक्षक कर रहे हैं। 82 प्रतिशत रिहाइशी इलाकों में एक किलोमीटर की परिधि के अन्दर प्राथमिक और 75 प्रतिशत रिहाइशी इलाकों में तीन किलोमीटर के अंदर उच्च प्राथमिक पाठशाला हैं। माध्यमिक स्तर की परीक्षा में भाग लेने वाले बच्चों में कम से कम 50 प्रतिशत बच्चे परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। इन रुझानों के बावजूद भारत के 37 प्रतिशत लोगों में साक्षरता कौशलों का अभाव है। प्राथमिक स्कूलों में बच्चों के स्कूल छोड़ने की दर 53 प्रतिशत है और लगभग 75 प्रतिशत से भी अधिक ग्रामीण स्कूल बहुश्रेणीय हैं। इसके अतिरिक्त हमारे शैक्षिक अभ्यासों के अनेक पहलुओं को लेकर और भी गहरा असंतोष व्याप्त हैः (क) स्कूल व्यवस्था में एक विशेष तरह की कठोरता है जो बदलाव के मार्ग पर एक बाधा की तरह खड़ी हो जाती है; (ख) 'सीखना' एक प्रकार से अलग-थलग गतिविधि हो गई है, जो बच्चों को अपने ज्ञान को जैविक व जीवन्त तरीके से जीवन से जोड़ने को प्रोत्साहित नहीं करती; (ग) स्कूल इस तरह की विचार पद्धति को प्रचारित करते हैं जो रचनात्मक चिंतन व अंतर्दृष्टि को हतोत्साहित करे; (घ) स्कूलों में सीखने-सिखाने के नाम पर जो दिया जाता है वह नयी जानकारी व ज्ञान रचने की मानवीय सामर्थ्य के महत्त्वपूर्ण आयाम को अनदेखा कर देता है; (ङ) बच्चे का 'भविष्य' अब इतना महत्त्वपूर्ण हो गया है कि बच्चे के 'वर्तमान' को अनदेखा किया जा रहा है, जो बच्चे, समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर है।

शिक्षा के मूल सरोकार आज भी निस्संदेह महत्त्व रखते हैं ये हैं - बच्चों को इतना सक्षम बनाना कि वे जीवन का अर्थ समझ सकें और अपनी योग्यताओं का विकास कर सकें, अपने जीवन का एक उद्देश्य निश्चित करें और उसे प्राप्त करने का प्रयास करें तथा दूसरे व्यक्ति को भी ऐसा करने का अधिकार दें। यदि हमें कुछ करना है, तो वह है मनुष्यों की परस्पर निर्भरता को रेखांकित करना, और जैसा टैगोर कहते हैं कि जब हम स्वयं को दूसरों के माध्यम से अनुभव करें, तभी हमें सबसे बड़ी खुशी मिलती है। साथ ही विभिन्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों से आए बच्चों में, जो ज्यादा से ज्यादा संख्या में स्कूलों का हिस्सा बन रहे हैं, समानता की अवधारणा को पुख्ता करना भी आवश्यक है। प्रतिस्पर्द्धात्मक अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ शिक्षा को भौतिक सफलता अर्जित करने का माध्यम बनाने की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं। यह समझ जो व्यक्ति को विशिष्ट प्रतिस्पर्द्धात्मक संबंधों में रखती है, बच्चों पर बेवजह दबाव डालती है और इस प्रकार मूल्यों को विकृत कर देती है। इससे एक-दूसरे से सीखने की प्रक्रिया का भी कोई परिणाम नहीं निकलता। शिक्षा को उन मूल्यों को प्रसारित करने में सक्षम होना चाहिए जो शांति, मानवता और सांस्कृतिक-विविधता वाले समाज में सहिष्णुता को पोषित करें।

यह दस्तावेज़ ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत करता है जिसके अंतर्गत शिक्षक व स्कूल उन अनुभवों का चुनाव कर सकते हैं और उनकी योजना बना सकते हैं, जो उनके अनुसार बच्चों के लिए लाभप्रद हो सकते हैं। शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पाठ्यचर्या की परिकल्पना ऐसी संरचना के रूप में की गई है, जो इन आवश्यक अनुभवों को स्पष्ट रूप से मुखरित कर सके। इसके लिए, इसे कुछ बुनियादी प्रश्नों को सम्बोधित करना होगाः

(क) स्कूल किन शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिश करें?

(ख) इन उद्देश्यों के लिए कौन से शैक्षिक अनुभव कारगर होंगे?

(ग) ये शैक्षिक अनुभव किस प्रकार सार्थक रूप से नियोजित किए जा सकते हैं?

(घ) हम कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं कि ये शैक्षिक उद्देश्य वाकई पूरे हो रहे हैं?

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2000 का पुनरावलोकन विशेष रूप से बच्चे पर पाठ्यचर्या के बढ़ते बोझ की समस्या को संबोधित करने के उद्देश्य से आरंभ किया गया था। नब्बे के दशक की शुरुआत में मानव संसाधन विकास मंत्रालय

ने इस समस्या के विश्लेषण के लिए एक समिति नियुक्त की थी जिसने इसके विश्लेषण के बाद पाया था कि इस समस्या की जड़ में व्यवस्था की वह प्रवृत्ति है जो सूचना को ज्ञान समझती है। इसकी रिपोर्ट (शिक्षा बिना बोझ के) में समिति ने इस बात की ओर इंगित किया कि स्कूलों में शिक्षा/पढ़ाई तब तक एक आनंदपूर्ण अनुभव नहीं हो सकता जब तक बच्चों के संबंध में हम अपनी इस समझ को न बदल लें कि बच्चे ज्ञान के ग्रहणकर्ता मात्र हैं और पाठ्यपुस्तकें ही परीक्षा का आधार हैं। उनके अपने अनुभवों से जानकारी रचने की उनकी सामर्थ्य पर हमारी आस्था कम है अतः हम उन्हें हर बात सिखाने पर तुले रहते हैं। पाठ्यपुस्तकों का आकार प्रति वर्ष बढ़ता ही जा रहा है। नए विषयों को समाहित करने का दबाव भी बढ़ रहा है और जानकारी को संश्लेषित कर उसे समग्रता में देखने का प्रयास कमज़ोर होता जा रहा है। मोटी-मोटी पाठ्यपुस्तकें और उनमें शामिल पाठ्यक्रम दरअसल बच्चों को केंद्र में रख कर उन्हें संबोधित करने की व्यवस्था की असफलता का प्रतीक हैं। ऐसी एन्साइक्लोपीडिया जैसी किताबें लिखने वाले इस प्रचलित धारणा से प्रेरित होते हैं कि चूँकि दुनिया में जानकारी का विस्फोट हुआ है दूसरे देशों से कदम मिलाकर चलने के लिए भारत को भी समूची जानकारी की विशाल राशि हमारे छोटे बच्चों के गलों में ठूँस देनी चाहिए। 'शिक्षा बिना बोझ के' (लर्निंग विदाउट बर्डन) ने पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों की रूपरेखा में विशेष परिवर्तन लाने की सिफारिश की और इस बात की भी सिफारिश की कि समाज की इस मानसिकता में बदलाव आना चाहिए जो बच्चों पर उग्र रूप से प्रतिस्पर्द्धी बनने व असामान्य योग्यता दर्शाने के लिए दबाव डालती है। अध्यापन को बच्चे के रचनात्मक स्वभाव के सदुपयोग का माध्यम बनाने के लिए इस रिपोर्ट ने सिफारिश की कि स्कूली पाठ्यचर्या और परीक्षा व्यवस्था दोनों में, जो बच्चों को बहुत-सी जानकारी रटने और उसे उगलने के लिए विवश करती है, मूलभूत परिवर्तन किए जाएँ। यांत्रिक तरीके से परखे जाने के लिए सीखने की प्रक्रिया बच्चे से बच्चा होने का सुख छीन लेती है तथा स्कूली जानकारी को प्रतिदिन के अनुभव से अलग कर देती है। इस गहन संरचनात्मक समस्या से निपटने के लिए मौजूदा दस्तावेज़ में 'लर्निंग विदाउट बर्डन' की अंतर्दृष्टि व सिफारिशों की सहायता ली गई है व उनका विस्तार भी किया गया है।

नुस्खे देने की जगह यह दस्तावेज़ पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तकों की रूपरेखा तैयार करने व परीक्षा प्रणाली के सुधार में शामिल विभिन्न शिक्षकों, प्रशासनिक अधिकारियों व अन्य एजेंसियों को कुछ तर्कपूर्ण चुनाव व निर्णय करने में सक्षम बनाने का प्रयास है। यह उन्हें नवाचार एवं स्थानीय परिवेश पर आधारित कार्यक्रम विकसित करने तथा उन्हें लागू करने में भी सहायता देगा। समकालीन सामाजिक यथार्थ में पाठ्यचर्या के नवीनीकरण की प्रक्रिया में आने वाली चुनौतियों को संदर्भ में रख कर यह दस्तावेज़ उन विशेष समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करता है जिनके लिए कल्पनाशील प्रतिक्रियाओं की आवश्यकता है। हमें उम्मीद है कि इससे इस समय चल रही सुधार की प्रक्रिया दृढ़ होगी, मसलन निर्णय लेने के अधिकार का शिक्षकों व निर्वाचित स्थानीय संस्थाओं को हस्तांतरित होना। साथ ही यह कुछ नए क्षेत्रों की पहचान करेगा जिन पर ध्यान देना ज़रूरी है जैसे पाठ्यपुस्तकों में बहुलता व विविधता और परीक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार।

1.2 पश्चावलोकन

महात्मा गांधी ने शिक्षा को एक ऐसे माध्यम के रूप में देखा था, जो सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अन्याय, हिंसा व असमानता के प्रति राष्ट्र की अंतरात्मा को जगा सके। 'नयी तालीम' ने आत्मनिर्भरता व व्यक्ति के आत्म-सम्मान पर ज़ोर दिया था जो ऐसे सामाजिक संबंधों का आधार बने जिनकी खासियत हो समाज के भीतर व बाहर अहिंसा।

गांधी जी ने सुझाया था कि बच्चे को रूपांतरित होते सामाजिक परिदृश्य का एक अंग बनाने के लिए बच्चे के आस-पास के पर्यावरण, जिसमें मातृभाषा एवं कार्य भी आते हैं, का एक साधन के रूप में उपयोग किया जाए। उन्होंने ऐसे भारत का सपना देखा था जिसमें प्रत्येक बालक अपनी योग्यता व संभावनाओं की तलाश कर सके और दूसरों के साथ विश्व के पुनर्निर्माण के लिए काम कर सके, एक ऐसा विश्व जिसमें आज भी राष्ट्रों के बीच समाज के भीतर, तथा मानवता व प्रकृति के बीच संघर्ष बरकरार है ।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अभिव्यक्त शिक्षा संबंधी सरोकारों को स्वतंत्रता के बाद, राष्ट्रीय आयोगों द्वारा मुखरित किया गया। ये आयोग थे— माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) व शिक्षा आयोग (1964-66)। दोनों आयोगों ने बदले हुए सामाजिक-राजनैतिक संदर्भ में राष्ट्रीय विकास पर विशेष बल देते हुए महात्मा गांधी के शिक्षा-दर्शन से उभरे मुख्य बिंदुओं को विस्तार दिया।

वर्ष 1976 तक भारतीय संविधान के अंतर्गत राज्य सरकारों को स्कूली शिक्षा संबंधी सभी निर्णय लेने का अधिकार था। इसके अंतर्गत उनके अधिकार क्षेत्र में पाठ्यचर्या भी आती थी। केंद्र केवल नीतिगत मुद्दों पर राज्यों का मार्गदर्शन कर सकता था। इन परिस्थितियों में 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति और एन.सी.ई.आर.टी. (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्) द्वारा 1975 में पाठ्यचर्या रूपरेखा की रचना की गई। 1976 में संविधान में संशोधन किया गया और शिक्षा के उत्तरदायित्व को समवर्ती सूची में लाया गया और पहली बार वर्ष 1986 में शिक्षा पर पूरे देश की एक राष्ट्रीय नीति बनी। शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (1986) ने सिफ़ारिश की कि पूरे देश की स्कूली पाठ्यचर्या के मूल में एक सर्वसामान्य (कॉमन कोर) तत्व हो। इस नीति ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकसित करने व इस रूपरेखा की समय-समय पर समीक्षा करने का उत्तरदायित्व सौंपा।

वर्ष 1975 के बाद पाठ्यचर्या संबंधी कार्य को जारी रखते हुए परिषद् ने कुछ अध्ययन किए व परामर्श दिए और अपनी गतिविधियों के एक भाग के रूप में वर्ष 1984 में पाठ्यचर्या की एक रूपरेखा भी तैयार की। इस गतिविधि का उद्देश्य था पूरे देश में गुणवत्ता के स्तर पर स्कूली शिक्षा को तुलनीय अर्थात् लगभग समान बनाना तथा देश की विविधता पर समझौता न करते हुए शिक्षा को राष्ट्रीय एकता का माध्यम बनाना। ऐसे ही अनुभव पर आधारित परिषद् के कार्य की अंततः परिणति हुई स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 1988 के रूप में। बहरहाल, एक तेज़ी से बदलते विकासशील संदर्भ में अध्ययन के विषयों व पाठ्यपुस्तकों के ज़रिए इस रूपरेखा का परिणाम यह हुआ कि 'पाठ्यचर्या का बोझ' बढ़ गया और स्कूली पढ़ाई बाल्यावस्था व किशोरावस्था के निर्माणात्मक वर्षों में उनके शरीर व मस्तिष्क पर तनाव का स्रोत बन गई। प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में गठित समिति की रिपोर्ट, जिसका शीर्षक था 'लर्निंग विदाउट बर्डन' (शिक्षा बिना बोझ के), 1993, ने इस पहलू को स्पष्ट व सुसंगत रूप से रखा।

1.3 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की इन सिफ़ारिशों के बावजूद कि विभिन्न अवस्थाओं में पोषित व विकसित की जाने वाली दक्षताओं व मूल्यों की पहचान की जाए, स्कूली शिक्षा उन परीक्षाओं द्वारा और अधिक परिचालित होती चली गई जो महज़ जानकारी से भरी पाठ्यपुस्तकों पर आधारित होती हैं। वर्ष 2000 में पाठ्यचर्या की रूपरेखा की समीक्षा के बाद भी पाठ्यचर्या के और परीक्षाओं की तानाशाही के विवादास्पद मुद्दे हल न हुए। वर्तमान समीक्षा इस क्षेत्र में हुए सकारात्मक व नकारात्मक दोनों

प्रकार के परिवर्तनों पर ध्यान देती है और नयी सदी के मोड़ पर स्कूली शिक्षा की भावी आवश्यकताओं को संबोधित करने का प्रयास करती है। इस प्रयास में अनेक परस्पर संबंधित आयामों को ध्यान में रखा गया है; जैसे – शिक्षा के लक्ष्य, बच्चों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान की प्रकृति, मानव विकास की प्रकृति और मनुष्य की सीखने की प्रक्रिया।

'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' को प्रायः गलत समझा गया है मानो यह एकरूपता लाने के लिए प्रस्तावित दस्तावेज़ हो। जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई.) 1986 और प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन (पी.ओ.ए.), 1992 में स्पष्ट किया गया उद्देश्य इसके ठीक विपरीत था। एन.पी.ई. ने नवीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा प्रस्तावित की ताकि वह ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के विकास का ज़रिया बने जिसमें यह सामर्थ्य हो कि वह भारत के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक वातावरण को दृष्टि में रखते हुए अकादमिक घटकों के साथ सामान्य आधारभूत मूल्य भी सुनिश्चित करे। ''एन.पी.ई.-पी.ओ.ए. ने 14 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों का सार्वभौमिक नामांकन तथा सार्वभौमिक रूप से उन्हें स्कूलों में टिकाए रखने और स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में ठोस सुधार के लिए बाल केंद्रित उपागम का विचार प्रस्तुत किया था''(पी.ओ.ए. पृष्ठ 77)। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा की खासियत के रूप में प्रासंगिकता, लचीलापन तथा गुणवत्ता पर बल देते हुए पी.ओ.ए. ने एन.पी.ई. की इसी दृष्टि को विस्तारित किया है।

इस प्रकार इन दोनों दस्तावेज़ों ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की परिकल्पना शिक्षा व्यवस्था को आधुनिक बनाने के साधन के रूप में की।

1.4 मार्गदर्शक सिद्धांत

हमें व्यवस्थागत मुद्दों पर ध्यान देने व उन्हें नियोजित करने की आवश्यकता है जिससे हम उन अनेक अच्छे विचारों को कार्यान्वित कर सकें जिनके बारे में पहले भी बात की जा चुकी है। इनमें सबसे अहम हैं :

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना,
- पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चित करना,
- पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि वह

> राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था पूरे देश के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षाक्रम के ढाँचे पर आधारित होगी जिसमें एक ''सामान्य केंद्र'' (कॉमन-कोर) होगा और अन्य हिस्सों की बाबत लचीलापन रहेगा, जिन्हें स्थानीय पर्यावरण तथा परिवेश के अनुसार ढाला जा सकेगा। ''सामान्य केंद'' में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक जिम्मेदारियों तथा राष्ट्रीय अस्मिता से संबंधित अनिवार्य तत्व शामिल होंगे। ये मुद्दे किसी एक विषय का हिस्सा न होकर लगभग सभी विषयों में पिरोए जाएँगे। इनके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों को हर व्यक्ति की सोच और ज़िंदगी का हिस्सा बनाने की कोशिश की जाएगी। इन राष्ट्रीय मूल्यों में ये बातें शामिल हैंः हमारी समान सांस्कृतिक धरोहर, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, स्त्री-पुरुषों के बीच समानता, पर्यावरण का संरक्षण, सामाजिक समता, सीमित परिवार का महत्त्व और वैज्ञानिक तरीके के अमल की ज़रूरत। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों के अनुरूप ही आयोजित हों। भारत ने विभिन्न देशों में शांति और आपसी भाईचारे के लिए सदा प्रयत्न किया है, और ''वसुधैव कुटुंबकम'' के आदर्शों को सँजोया है। इस परंपरा के अनुसार शिक्षा-व्यवस्था का प्रयास यह होगा कि नयी पीढ़ी में विश्वव्यापी दृष्टिकोण सुदृढ़ हो तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना बढ़े। शिक्षा के इस पहलू की उपेक्षा नहीं की जा सकती। समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध करवाना ही पर्याप्त नहीं होगा, ऐसी व्यवस्था होना भी ज़रूरी है जिससे सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिलें। इसके अतिरिक्त, समानता की मूलभूत अनुभूति केंद्रिक पाठ्यचर्या के द्वारा करवाई जाएगी। वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वग्रह और कुंठाएँ दूर हों।
>
> **राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986**

समानता के व्यवहार या लड़कियों के लिए समान अवसर के संबंध में औपचारिक दृष्टिकोण अपर्याप्त है। आज एक कारगर दृष्टिकोण अपनाए जाने की ज़रूरत है, ताकि परिणामों में समानता आए, और जिसमें विविधता, विभेद और असुविधाओं का भी ध्यान रखा जाए।

समानता की दिशा में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका यह समझी जाती है कि यह सभी शिक्षार्थियों को अपने अधिकारों की दिशा में सजग बनाए ताकि वे समाज तथा राजनीति में अपना योगदान कर सकें। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि उन अधिकारों और सुविधाओं को तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक केंद्रीय मानवीय क्षमताओं का विकास न हो जाए। इसलिए हाशिए पर ढकेल दिए गए समाजों के विद्यार्थियों, विशेषकर लड़कियों के लिए, यह मुमकिन होना चाहिए कि वे अपने अधिकारों का दावा कर सकें और सामूहिक जीवन को रूप देने में सक्रिय भूमिका अदा कर सकें। इसके लिए शिक्षा को ऐसा होना चाहिए कि वह उनमे यह सामर्थ्य दे सके कि वे असमान समाजीकरण के नुकसान की भरपाई कर सकें और अपनी क्षमताओं का इस प्रकार विकास कर सकें कि आगे चलकर वे स्वायत्त और समान नागरिक बन सकें।

पाठ्यपुस्तक-केंद्रित बन कर रह जाए,

- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना, और
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताए समाहित हों।

वर्तमान संदर्भ मे कुछ नए बदलाव, नए सरोकार पैदा हुए हैं जिन्हें पाठ्यचर्या को संबोधित करना ही चाहिए। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है, सभी बच्चों को एक ऐसे कार्यक्रम के ज़रिए स्कूलों से जोड़ना तथा उन्हें वहाँ टिकाए रखना जो हर बच्चे की महत्ता को फिर से दृढ़ करने को महत्त्वपूर्ण समझे और सभी बच्चों को उनकी गरिमा का एहसास कराए तथा उनमें सीखने का विश्वास जगाए। पाठ्यचर्या की रूपरेखा में सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा (यू.ई.ई.) के लिए प्रतिबद्धता भी दिखनी चाहिए, केवल सांस्कृतिक विविधता के प्रतिनिधित्व के रूप में ही नहीं बल्कि यह सुनिश्चित करके भी कि विभिन्न सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमियों से आए विभिन्न शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व बौद्धिक विशेषताओं वाले बच्चे स्कूल में सीखने व सफलता प्राप्त करने में समर्थ हों। इस संदर्भ में लिंग, जाति, भाषा, संस्कृति, धर्म या असमर्थता से जनित असमानताओं के परिणामस्वरूप शिक्षा में आई प्रतिकूलताओं को सीधे संबोधित करने की आवश्यकता है, नीतियों व योजनाओं के माध्यम से ही नहीं बल्कि आरंभिक बाल्यावस्था से ही अधिगम कार्य की रूपरेखा बनाने एवं चुनने तथा शिक्षाशास्त्रीय अभ्यास के ज़रिए भी।

सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा (यू.ई.ई.) हमें इस बात से अवगत कराती है कि पाठ्यचर्या में विस्तार करके उसमें ज्ञान, कार्य एवं शिल्प की विभिन्न परंपराओं की समृद्ध विरासत को शामिल करना भी आवश्यक है। इनमें से कुछ परंपराएँ आज अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण के संदर्भ में बाज़ार के दबाव और ज्ञान के वस्तु बन जाने से प्रस्तुत गंभीर संकट से जूझ रही हैं। आत्म-सम्मान व नैतिकता का विकास और बच्चों में रचनात्मकता के पोषण की आवश्यकता को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। तेज़ी से बदलती और प्रतिस्पर्द्धी वैश्विक अर्थव्यवस्था के संदर्भ में यह आवश्यक है कि हम बच्चों की जन्मजात बुद्धि व कल्पना का आदर करें।

विकेंद्रीकरण और पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका पर बल देना हाल ही में शिक्षा में हुए व्यवस्थागत सुधारों के कुछ प्रमुख कदम हैं। पंचायती राज संस्थाएँ व्यवस्था में दफ्तरशाही का दबाव कम करती हैं, शिक्षकों को अधिक उत्तरदायी, विद्यालयों

को अधिक स्वायत्त एवं बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति सजग बनाती हैं। इन कदमों के साथ स्थानीय पर्यावरण और जीवन के बीच संगति बिठाने की भी आवश्यकता है। बच्चे काफी कुछ सहजता से अपने परिवेश में बड़े होते हुए सीख लेते हैं। वे अपने आस-पास के जीवन व दुनिया पर भी नज़र रखते हैं। जब उनके अनुभवों को कक्षा में लाया जाएगा, तो उनके प्रश्नों, उनकी जिज्ञासाओं से पाठ्यचर्या अधिक समृद्ध और रचनात्मक बनेगी। इन सुधारों से स्वीकृत पाठ्यचर्या के सिद्धांतों — 'ज्ञात से अज्ञात की ओर', 'मूर्त से अमूर्त की ओर' और 'स्थानीय से वैश्विक की ओर' को बल मिलेगा। इस उद्देश्य के लिए स्कूली शिक्षण के सभी आयामों में विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र को अपनाने की आवश्यकता है, जिनमें शिक्षक शिक्षा भी शामिल है। उदाहरण के लिए उत्पादक कार्य प्रभावी शिक्षण का माध्यम बन सकते हैं, अगर (क) कक्षा के ज्ञान को बच्चों के जीवन-अनुभव से जोड़ा जाए; (ख) हाशिए के समाजों के बच्चों को, जिन्हें काम से जुड़े कौशल का ज्ञान होता है, अपने संपन्न साथियों का मान-सम्मान पाने का अवसर मिल सकेगा; और (ग) संचित मानवीय अनुभव, ज्ञान और सिद्धांतों को इस प्रकार संदर्भित किया जा सकेगा।

बच्चों को पर्यावरण व पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशील बनाना भी पाठ्यचर्या का एक महत्त्वपूर्ण सरोकार है। पिछली सदी में उभरे नए तकनीकी विकल्प व जीवनशैली से पर्यावरण को नुकसान पहुँचा है और परिणामस्वरूप सुविधासंपन्न व सुविधारहित वर्गों के बीच गहरा असंतुलन आ गया है। अब यह पहले से कहीं अधिक अनिवार्य हो गया है कि पर्यावरण का पोषण व संरक्षण किया जाए। शिक्षा इसके लिए आवश्यक परिप्रेक्ष्य दे सकती है कि मानव जीवन का पर्यावरण संकट के साथ सामंजस्य कैसे बैठाया जा सकता है ताकि जीवन, विकास व संवर्धन संभव हो सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ने इस आवश्यकता पर ज़ोर दिया कि पर्यावरण को शिक्षा के सभी स्तरों पर व समाज के सभी वर्गों के लिए समाहित कर पर्यावरण संबंधी सरोकार के प्रति जागरूकता पैदा की जाए।

अपने भीतर व अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते रहना एक मूल मानवीय आवश्यकता है। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का भलीभांति विकास एक ऐसे माहौल में ही संभव हो सकता है जो शांतिपूर्ण हो।

एक अशांत प्राकृतिक व सामाजिक वातावरण अक्सर मानव संबंधों में तनाव लाता है जिससे असहिष्णुता व संघर्ष पैदा होता है। हम अभूतपूर्व हिंसा के युग में जी रहे हैं जो स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व वैश्विक है। ऐसे में शिक्षा प्रायः एक अकर्मक भूमिका या यहाँ तक कि युवा मस्तिष्क को असहिष्णुता की संस्कृति का पाठ पढ़ा कर घातक भूमिका निभाती है जिससे मानवीय भावनाओं व विभिन्न सभ्यताओं द्वारा खोजे गए उदात्त सत्य नकारे जाते हैं। शांति की संस्कृति का निर्माण करना शिक्षा का निर्विवाद उद्देश्य है। शिक्षा सार्थक तभी हो सकती है जब वह व्यक्ति को इतना समर्थ बनाए ताकि वह शांति को जीवन शैली के रूप में चुन सके और संघर्ष को सुलझाने की क्षमता रखे न कि केवल संघर्ष का एक निष्क्रिय दर्शक बने। स्कूली पाठ्यचर्या के एक एकीकृत परिप्रेक्ष्य के रूप में शांति की अवधारणा को रखने पर इसमें राष्ट्र को स्वस्थ रखने व ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता है।

राष्ट्र के रूप में हम एक मुखर व सक्रिय लोकतंत्र को कायम रखने में सफल हुए हैं। यहाँ पर माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) द्वारा की गई परिकल्पना स्मरण योग्य है:

> *"लोकतंत्र में नागरिकता की परिभाषा में कई बौद्धिक, सामाजिक व नैतिक गुण शामिल होते हैं: एक लोकतांत्रिक नागरिक में सच को झूठ से अलग छाँटने, प्रचार से तथ्य अलग करने,*

धर्मांधता और पूर्वग्रहों के खतरनाक आकर्षण को अस्वीकार करने की समझ व बौद्धिक क्षमता होनी चाहिए ... वह न तो पुराने को इसलिए नकारे क्योंकि वह पुराना है, न ही नए को इसलिए स्वीकार करे क्योंकि वह नया है — बल्कि उसे निष्पक्ष रूप से दोनों को परखना चाहिए और साहस से उसको नकार देना चाहिए जो न्याय व प्रगति के बलों को अवरुद्ध करता हो ...''

अगर हमें लोकतंत्र को शासन चलाने की प्रणाली मात्र नहीं बल्कि एक जीवन शैली के रूप में पोषित करना है तो, संविधान में निहित मूल्य सर्वोपरि महत्त्व के हो जाते हैं।

- भारत का संविधान सभी नागरिकों को स्थिति व अवसर की समानता का आश्वासन देता है। शिक्षा की परिधि से बच्चों की विशाल संख्या का बाहर होना और निजी व सरकारी स्कूली व्यवस्था से पैदा हुई विषमताएँ, समानताओं के लिए किए गए प्रयासों को बाधित करती हैं। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन व समतावादी सामाजिक व्यवस्था के माध्यम के रूप में कार्य करना चाहिए।
- सभी को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय उपलब्ध कराना लोकतंत्र को दृढ़ करने के लिए अनिवार्य है।
- कार्य व विचारों की स्वतंत्रता हमारे संविधान में निहित एक मूलभूत मूल्य है। लोकतंत्र में ऐसे नागरिक की आवश्यकता होती है और वह ऐसे नागरिक रचता है जो स्वतंत्र रूप से अपने लिए निर्धारित उद्देश्यों को पाने के लिए कार्य करे और दूसरों के इस अधिकार का आदर करे।
- एक नागरिक के लिए यह आवश्यक है कि समाज में भाईचारे की भावना प्रोत्साहित करने के लिए वह समानता, न्याय व स्वतंत्रता के सिद्धांतों को आत्मसात करे।
- भारत एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है, इसका अर्थ है कि सभी आस्थाओं का आदर किया जाता है, लेकिन साथ ही भारतीय गणराज्य किसी आस्था विशेष को अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ नहीं मानता। आज बच्चों में सभी लोगों के प्रति चाहे वे किसी भी धर्म के हों, समान आदरभाव पोषित करने की ज़रूरत है।

भारत विविध संस्कृतियों वाला समाज है जो अनेक प्रादेशिक व स्थानीय संस्कृतियों से मिल कर बना है। लोगों के धार्मिक विश्वास, जीवन शैली व सामाजिक संबंधों की समझ एक-दूसरे से बहुत अलग है। सभी समुदायों को सह-अस्तित्व व समान रूप से समृद्ध होने का अधिकार है और शिक्षा व्यवस्था को भी हमारे समाज में निहित इस सांस्कृतिक विविधता के अनुरूप होना चाहिए। अपनी सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय अस्मिता को सुदृढ़ करने के लिए पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए कि वह युवा पीढ़ी को इसके लिए सक्षम बना सके कि वह नयी प्राथमिकताओं व बदलते सामाजिक संदर्भ में उभरते दृष्टिकोणों के परिप्रेक्ष्य में अतीत का पुनर्मूल्यांकन व पुनर्व्याख्या कर पाए। मानव-विकास की समझ के आधार पर यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि हमारे देश में विविधता का अस्तित्व दरअसल हमारे यहाँ की उस विशिष्ट चेतना का सुफल है जिसने उसे फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर दिया। इस भूमि की सांस्कृतिक विविधता को हमारी विशिष्टता की तरह संजोए रखना चाहिए। इसे केवल सहिष्णुता का परिणाम नहीं समझा जाना चाहिए। इस संदर्भ में युवा पीढ़ी में अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति एक नागरिक

चेतना व संविधान में निहित सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता की रचना पूर्वापेक्षित है।

1.5 गुणवत्ता के आयाम

जब व्यवस्था प्रत्येक बच्चे तक पहुँचने का प्रयास करती है तो गुणवत्ता का मुद्दा नयी तरह की चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है। यह मान्यता कि गुणवत्ता सुविधा का अनुसरण करती है, सहभागिता पर आधारित लोकतंत्र के उस दर्शन से असंगत बैठती है जिसका व्यवहार भारत राजनैतिक क्षेत्र में करता है। शिक्षा के क्षेत्र में उसे संभव करने के लिए आवश्यक है कि समाज के विभिन्न वर्गों व क्षेत्रों में सभी बच्चों को उपलब्ध शिक्षा की गुणवत्ता तुलनीय हो। श्री जे. पी. नायक ने समानता, गुणवत्ता व परिमाण को भारतीय शिक्षा का 'दुर्ग्राह्य त्रिकोण' बताया था। इस 'दुर्ग्राह्य त्रिकोण' को समझने के लिए अभी तक उपलब्ध गुणवत्ता की गहन सैद्धांतिक समझ से अपेक्षाकृत अधिक गहरे अध्ययन की आवश्यकता है। हाल ही में यूनेस्को द्वारा प्रकाशित वैश्विक मॉनीटरिंग रिपोर्ट, व्यवस्थागत मानकों को गुणवत्ता-संबंधी विमर्श के सटीक संदर्भ के रूप में देखती है। इस नज़रिए से, बच्चे के प्रदर्शन को व्यवस्थागत गुणवत्ता का एक संकेतक समझना चाहिए। एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था, जो तेज़ी से बढ़ते निजी क्षेत्र और उससे भी बड़े सरकारी क्षेत्र में विभाजित है, जो संसाधनों की कमी व असमान वितरण से बोझिल है, वह गुणवत्ता के मुद्दे पर अनेक जटिल व व्यावहारिक प्रश्न खड़े करती है। यह विश्वास कि निजी स्कूल अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होते हैं इस मान्यता से जनित है कि परीक्षा परिणाम ही शिक्षा के स्तर को परखने का एकमात्र मापदंड है। इस तरह की समझ सुविधासंपन्न निजी स्कूलों के माहौल-संबंधी सीमाओं पर ध्यान नहीं देती। यह तथ्य, कि ऐसे स्कूल प्रायः बच्चे की मातृभाषा की उपेक्षा करते हैं, हमारे समक्ष प्रश्न खड़ा करता है कि वे ज्ञान को सार्थक रूप से रचने के कितने अवसर बच्चों को दे पाएँगे। इसके ही साथ, प्रवेश प्रक्रिया में निर्धन वर्ग के बहिष्कार का अर्थ है कक्षा में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आए बच्चों के बीच सीखने के अवसरों का खो देना।

> "लोकतंत्र प्रत्येक व्यक्ति के मनुष्य के रूप में सम्मान व योग्यता में आस्था पर आधारित होता है... अतः लोकतांत्रिक शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्तित्व का पूर्ण व चहुँमुखी विकास — अर्थात् एक ऐसी शिक्षा जो विद्यार्थियों को एक समुदाय में जीने की बहुआयामी कला में दीक्षित करे। बहरहाल, यह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति अकेले न तो रह सकता है न ही विकसित हो सकता है ... उस शिक्षा का कोई लाभ नहीं जो अपने साथी नागरिकों के साथ शालीनता, सामंजस्य, कार्यकुशलता के साथ जीने की शैली के लिए आवश्यक गुणों को पोषित न करती हो।"
> *(माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952-53, पृष्ठ 20)*

भौतिक संसाधन अपने आप में गुणवत्ता के द्योतक नहीं माने जा सकते; फिर भी सरकार या स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित स्कूलों में भौतिक संसाधनों की अत्यधिक व दीर्घकालिक कमी जिसमें मूल ढाँचागत सुविधाओं की कमी भी शामिल है, गुणवत्ता को गंभीर रूप से सीमित करती है। योग्य व उत्साही शिक्षकों की उपलब्धता जो अध्यापन को कैरियर के विकल्प के रूप में देखते हैं, स्कूलों के सभी वर्गों में गुणवत्ता की एक आवश्यक शर्त है। हाल ही में एनपीई व इससे पहले चट्टोपाध्याय आयोग (1984) द्वारा अध्यापकों की भर्ती, प्रशिक्षण व सेवा शर्तों के लिए सुझाए गए आवश्यक मानकों को हलका करने का प्रस्ताव चिंताजनक है। शिक्षा की कोई भी व्यवस्था अपने अध्यापकों की श्रेष्ठता से ऊपर नहीं उठ सकती और अध्यापकों की श्रेष्ठता उन्हें चुनने के साधन, प्रशिक्षण प्रक्रिया और उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने के लिए प्रयुक्त नीतियों पर निर्भर करती है।

बच्चों के लिए जानकारी व हुनर के संदर्भ में परिकल्पित अनुभवों के दृष्टिकोण से भी गुणवत्ता

के आयाम को परखना आवश्यक है। ज्ञान की प्रकृति और बच्चे के अपने स्वभाव के बारे में मान्यताएँ स्कूल की प्रकृति और उन रवैए व तरीकों को आकार देती हैं, जिन्हें अध्यापकों एवं पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें तैयार करने वालों द्वारा उपयोग में लाया जाता है। पाठ्यपुस्तकों में व दूसरी सामग्री में जो जानकारी दी जाती है उसे उन चुनौतियों के वृहद परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक है जो आज राष्ट्र व मानवता के समक्ष मुँह बाए खड़ी हैं। इन गंभीर सरोकारों से कोई भी स्कूली पाठ्यचर्या अलग-थलग नहीं रह सकती और इसीलिए प्रत्येक विषय क्षेत्र में प्रस्तावित जानकारी के चुनाव का सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों व उद्देश्यों के संदर्भ में गंभीर परीक्षण होना चाहिए। शिक्षा के समक्ष सबसे बड़ी राष्ट्रीय चुनौती है, हमारे सहभागिता-आधारित लोकतंत्र व संविधान में प्रतिस्थापित मूल्यों को सुदृढ़ करना। इस चुनौती का सफलतापूर्वक सामना करने का अर्थ है कि हम गुणवत्ता और सामाजिक न्याय को पाठ्यचर्या में सुधार का केंद्रीय बिंदु बनाएँ। नागरिकता का प्रशिक्षण औपचारिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण पहलू रहा है। आज इसे सार्वभौमिक मानवीय अधिकारों व विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र से संबंधित प्रस्तावों के संबंध में निर्भीकता से पुनर्परिकल्पित करने की आवश्यकता है। शांति व सद्भावपूर्ण सह-अस्तित्व से संबंधित मूल्यों की ओर अभिमुखीकरण होना चाहिए। शिक्षा में गुणवत्ता के अंतर्गत जीवन के सभी आयामों के गुणवत्ता संबंधी सरोकार शामिल हैं। यही वजह है कि शांति के लिए चिंता, पर्यावरण संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन के प्रति झुकाव को मात्र मूल्यों की तरह नहीं बल्कि गुणवत्ता के मूलभूत तत्वों की तरह देखा जाना चाहिए।

1.6 शिक्षा का सामाजिक संदर्भ

शिक्षा व्यवस्था उस समाज से अलग-थलग होकर काम नहीं करती जिसका वह एक भाग है। जातिगत, आर्थिक तथा स्त्री-पुरुष संबंधों का पदानुक्रम, सांस्कृतिक विविधता और असमान विकास से, जो भारतीय समाज की विशेषताएँ हैं, शिक्षा की प्राप्ति और स्कूलों में बच्चों की सहभागिता प्रभावित होती है। स्कूल में नामांकित होने वाले और स्कूल की पढ़ाई पूरी करने वाले बच्चों के अनुपात के मामले में विभिन्न सामाजिक व आर्थिक समुदायों के बीच जो गहरी विषमता देखी जाती है, उसमें यह प्रतिबिंबित होता है। इस प्रकार ग्रामीण व शहरी गरीब वर्गों तथा धार्मिक एवं अन्य जातीय अल्पसंख्यकों और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समुदाय की लड़कियाँ शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक असुरक्षित होती हैं। शहरी इलाकों में और अनेक गाँवों में, स्कूली व्यवस्था स्वयं में अनेक स्तरों में बँटी हुई है और बच्चों को असाधारण रूप से अलग-अलग शैक्षिक अनुभव देती है। असमान लैंगिक संबंध न केवल वर्चस्व को बढ़ावा देते हैं बल्कि वे लड़के-लड़कियों में तनाव भी पैदा करते हैं तथा उनकी मानवीय क्षमताओं के पूर्ण विकास की स्वतंत्रता में बाधा पहुँचाते हैं। यह सबके हित में है कि मनुष्य को लिंग असमानताओं से मुक्त कराया जाए।

हमारे यहाँ विभिन्न श्रेणियों के स्कूल हैं। मंहगे 'पब्लिक' (निजी) स्कूलों से लेकर, जहाँ चुनिंदा सभ्रांत शहरी अपने बच्चों को भेजते हैं, स्पष्टतः 'मुफ्त', जैसे-तैसे चलते, स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक स्कूलों तक, जहाँ अब तक बड़ी संख्या में शैक्षिक रूप से वंचित रहे समुदाय के बच्चे ज्यादा आते हैं। हाल ही में एक असाधारण विशेषता उभरी है — ग्रामीण क्षेत्रों में बहुश्रेणीय स्कूल। रिहाइशों के एक किलोमीटर के भीतर स्कूल खोलने की आवश्यकता के कारण 'शिक्षक-विद्यार्थी' अनुपातों को यांत्रिक रूप से लागू करके इन्हें चलाया जाता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इन स्कूलों में पाठ्यचर्या की अवधारणाओं या शिक्षण सामग्री और पद्धति को लेकर कोई जागरूकता नहीं है। इससे शिक्षा एक ऐसी गतिविधि बन जाती है जिस पर सुविधा संपन्न तबके का वर्चस्व बढ़ता

जाता है और आबादी का बहुलांश इसके दायरे से बाहर ढकेल दिया जाता है। इस तरह अवसर की समानता और सामाजिक न्याय के संवैधानिक मूल्यों को धक्का पहुँचता है। यदि 'मुफ्त' शिक्षा का अर्थ शिक्षा से सभी प्रतिबंधों को हटाना समझा जाए, तो सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सरकार की सामाजिक नीति के अन्य क्षेत्रों की महत्ता बढ़ जाती है।

भूमण्डलीकरण व समाज के हर क्षेत्र में बाजार के संबंधों के फैलाव का शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण निहितार्थ है। एक तरफ तो हम शिक्षा के बढ़ते व्यवसायीकरण को देख रहे हैं तो दूसरी तरफ शिक्षा के लिए अपर्याप्त कोष (धन) व 'वैकल्पिक' स्कूलों को सरकारी बढ़ावा, इस ओर संकेत करते हैं कि शिक्षा का उत्तरदायित्व अब सरकार से हट कर, समुदायों व परिवारों पर आ रहा है। हमें स्कूलों को वस्तु बनने और बाज़ार संबंधी अवधारणाओं के स्कूलों व स्कूल की गुणवत्ता पर लागू होने के बारे में सतर्क रहना पड़ेगा। बढ़ती प्रतियोगिता के वातावरण के चलते, जिसमें स्कूल खिंचते चले जाते हैं और अभिभावकों की महत्त्वाकांक्षाओं के कारण बहुत छोटे बच्चों समेत सभी बच्चों पर जबर्दस्त दबाव पड़ता है और उनमें भयंकर तनाव पैदा होता है। इससे उनके वैयक्तिक विकास और सीखने के आनंद में बाधा खड़ी होती है।

संविधान का 73वाँ व 74वाँ संशोधन स्थानीय समुदायों को अपने बच्चों के लिए शिक्षा में निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए एक वैधानिक संस्थागत अवसर मुहैया करवाता है जो एक महत्त्वपूर्ण बदलाव है। बहरहाल, शिक्षा को लेकर माता-पिता की महत्त्वाकांक्षाएँ, स्थानीय गरीबी और असमान सामाजिक संबंधों व पर्याप्त समस्तरीय स्कूली शिक्षा की कमी के कारण ध्वस्त हो जाती हैं। शहरी गरीबों की लगातार बढ़ती जनसंख्या के प्रति चिंता योजनाओं में अभी तक दिखलाई नहीं देती। शिक्षा को लेकर निर्धन वर्ग की अपेक्षाओं व महत्त्वाकांक्षाओं को पाठ्यचर्या की रूपरेखा के सरोकारों से अलग नहीं रखा जा सकता।

इस प्रकार भारत में शिक्षा का सामाजिक संदर्भ अनेक चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है जिनको पाठ्यचर्या की रूपरेखा द्वारा परिकल्पना व व्यवहार, दोनों रूपों में संबोधित किया जाना चाहिए। मार्गदर्शक सिद्धांतों पर विमर्श ने इन चुनौतियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है और इनसे निपटने के लिए कुछ तरीके भी सुझाए हैं। इस दस्तावेज़ के विभिन्न खण्डों में कुछ नए विचारों पर विमर्श किया गया है जिनमें प्रमुख हैं — ज्ञान की अवधारणा को विस्तृत करना ताकि ज्ञान और अनुभव के नए क्षेत्र उसमें शामिल किए जा सकें; शैक्षिक कार्यों के चयन में समावेशी रवैया; शिक्षाशास्त्रीय अभ्यास जो सहभागिता को बढ़ावा देने के विषय में सजग हों; आत्मविश्वास और आलोचनात्मक जागरूकता का विकास; तथा पाठ्यचर्या से जुड़े निर्णयों के बारे में समुदाय से बातचीत करने को लेकर खुलापन।

1.7 शिक्षा के लक्ष्य

शिक्षा के लक्ष्यों में व्यापक दिशानिर्देश हैं जो शैक्षणिक प्रक्रियाओं के तय किए गए आदेशों और स्वीकृत सिद्धांतों से संगति बिठाने में मदद करते हैं। शिक्षा के लक्ष्य समाज की मौजूदा महत्त्वाकांक्षाओं व ज़रूरतों के साथ शाश्वत मूल्यों तथा समाज के तात्कालिक सरोकारों सहित वृहद मानवीय आदर्शों को भी प्रतिबिंबित करते हैं। किसी भी खास समय और स्थान के संदर्भ में इन्हें व्यापक और शाश्वत मानवीय आकांक्षाओं और मूल्यों की समकालीन और प्रासंगिक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

शैक्षिक लक्ष्य स्कूलों व अन्य शैक्षिक संस्थानों द्वारा चलाई जा रही विभिन्न गतिविधियों को एक रचनात्मक साँचे में ढाल कर उन्हें 'शैक्षिक' होने का विशिष्ट चरित्र प्रदान करते हैं। एक शैक्षिक

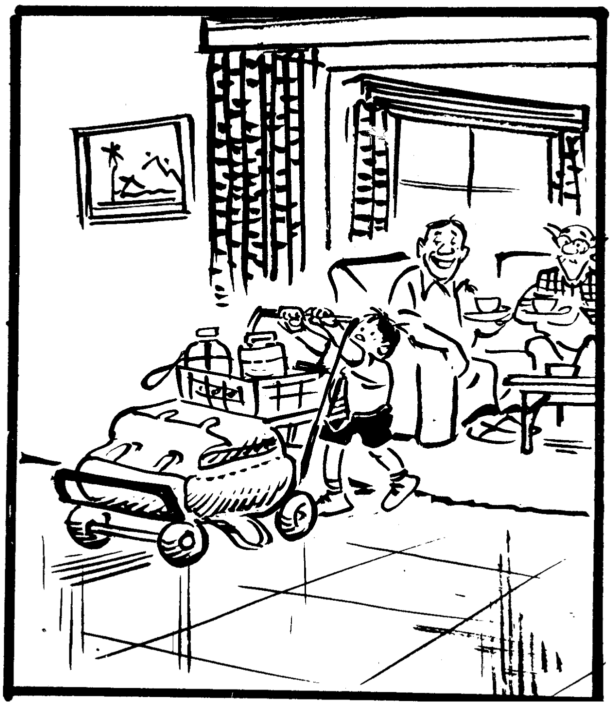

ओह! मेरा बेटा तो स्कूल के लिए चल चुका है। ....
खुशकिस्मती से मुझे यह हवाई अड्डे पर मिल गया था।
(साभारः आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया)

उद्देश्य शिक्षक की इस रूप से मदद करता है कि वह अपनी अभी की कक्षा की गतिविधि को भविष्य के अभीष्ट परिणाम से जोड़ सके लेकिन ऐसे कि वह गतिविधि मात्र उपयोगितावादी होकर न रह जाए। इस तरह वह उसे अभी की चिंताओं से अलग किए बिना एक दिशा भी प्रदान करता है। इसलिए एक उद्देश्य पूर्वज्ञात लक्ष्य होता है; यह दर्शक-मात्र का निष्क्रिय विचार नहीं, बल्कि यह उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उठाए गए कदमों को प्रभावित करता है। एक उद्देश्य को पूर्व-दृष्टि भी देनी चाहिए। ऐसा तीन तरीकों से किया जा सकता है : पहला, निश्चित परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन करके यह देखना कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए क्या साधन उपलब्ध हैं और उस मार्ग में क्या बाधाएँ हैं। इसमें बच्चों का बहुत सूक्ष्म अध्ययन करने और यह देखने की आवश्यकता होगी कि विभिन्न अवस्थाओं में वे क्या-क्या सीख सकते हैं। दूसरा, यह पूर्वदृष्टि उस क्रम की ओर इंगित करती है जो कारगर होगा। तीसरा, यह विकल्पों के चुनाव की संभावनाएँ भी खोलती है। इसलिए, एक लक्ष्य के साथ हम अपेक्षाकृत अधिक समझदारी से काम करते हैं। स्कूल, कक्षा और संबंधित शैक्षिक स्थल दरअसल वे स्थान होते हैं जहाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शैक्षिक क्रियाकलाप होते हैं। ये वे स्थान होने चाहिए जहाँ विद्यार्थियों को ऐसे अनुभव मिलें जो वांछित शैक्षिक उद्देश्यों को पाने में सहायक हों। विद्यार्थियों, शैक्षिक उद्देश्यों, ज्ञान की प्रकृति एवं सामाजिक जगह के रूप में स्कूल की समझ, कक्षा में चल रही गतिविधियों को निर्देशित करने के सिद्धांतों तक पहुँचने में मदद कर सकती है।

जिन मार्गदर्शक सिद्धांतों की पहले चर्चा की गई है वे सामाजिक मूल्यों को परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं, जिसमें हम अपने शैक्षिक उद्देश्यों को रख सकते हैं। पहला है लोकतंत्र, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, परोपकार, धर्मनिरपेक्षता, मानवीय गरिमा व अधिकार तथा दूसरे के प्रति आदर जैसे मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता। शिक्षा का उद्देश्य कारण और समझ पर आधारित इन्हीं मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता का निर्माण करना होना चाहिए। इसलिए पाठ्यचर्या में स्कूलों के लिए वह गुंजाइश ज़रूर होनी चाहिए ताकि वह संवाद एवं विमर्श के लिए जगह पैदा करते हुए बच्चों में इस तरह की प्रतिबद्धता का निर्माण कर सके ।

विचार तथा क्रिया की आज़ादी, स्वतंत्र तथा सामूहिक रूप से सावधानीपूर्वक विचार किए गए मूल्य-निर्धारित निर्णय लेने की क्षमता की तरफ इशारा करते हैं ।

ज्ञान और दुनिया की समझ के साथ दूसरे लोगों की भावनाओं व कल्याण के प्रति संवेदनशीलता को मूल्यों के प्रति तार्किक प्रतिबद्धता का आधार होना चाहिए।

सीखने के लिए सीखना, जो सीखा है उसे छोड़ने की और दुबारा सीखने की तत्परता, नयी

परिस्थितियों के प्रति लचीले व रचनात्मक तरीके से प्रतिक्रिया व्यक्त करने की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया पर ज़ोर डालने की आवश्यकता है।

जीवन में चुनाव व लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भागीदारी समाज में विभिन्न प्रकार से योगदान देने की सामर्थ्य पर निर्भर है। यही वजह है कि शिक्षा को काम करने, आर्थिक प्रक्रियाओं व सामाजिक बदलाव में हिस्सा लेने की सामर्थ्य को विकसित करना चाहिए। इसके लिए काम का शिक्षा से जुड़ाव अपरिहार्य है। कौशलों और प्रवृत्तियों के लिहाज से काम से जुड़े अनुभव इस तरह पर्याप्त और व्यापक होने चाहिए कि वे सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं की समझ पैदा कर सकें और ऐसी मानसिक संरचना विकसित करने में मदद करें जो सहकारिता की भावना से दूसरों के साथ मिलकर काम करने को प्रोत्साहन दे। केवल कार्य ही सामाजिक मनोवृत्ति की रचना कर सकता है।

सौंदर्य व कला के विभिन्न रूपों को समझना व उसका आनंद उठाना, मानव जीवन का अभिन्न अंग है। कला, साहित्य और ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में सृजनात्मकता का एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध है। बच्चे की रचनात्मक अभिव्यक्ति और सौंदर्यात्मक आस्वादन की क्षमता के विस्तार के लिए साधन और अवसर मुहैया कराना शिक्षा का अनिवार्य कर्तव्य है। आज जबकि बाज़ार की शक्तियों में मतों व अभिरुचियों को प्रभावित करने की गुंजाइश ज्यादा है, सौंदर्य की समझ व रचनात्मकता के लिए शिक्षा की महत्ता और भी बढ़ गई है। विद्यार्थी को सौंदर्य के विभिन्न रूपों को समझने व उनका विवेचन करने में समर्थ बनाने का प्रयास होना चाहिए। बहरहाल, हमें यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि हम मनोरंजन व सौंदर्य के उन रूढ़िबद्ध रूपों को प्रोत्साहित न करें जो महिलाओं व विभिन्न प्रकार की चुनौतियाँ झेल रहे व्यक्तियों को अपमानित करते हों।

2.1 सक्रिय विद्यार्थी की प्राथमिकता
2.2 विद्यार्थी को संदर्भ में रखना
2.3 विकास और सीखना
2.4 पाठ्यचर्या एवं व्यवहार के लिए निहितार्थ
2.5 ज्ञान एवं समझ
2.6 ज्ञान को फिर से रचना
2.7 बच्चों का ज्ञान और स्थानीय ज्ञान
2.8 स्कूली ज्ञान और समुदाय
2.9 कुछ विकासमूलक विचार

अध्याय 2 : सीखना और ज्ञान

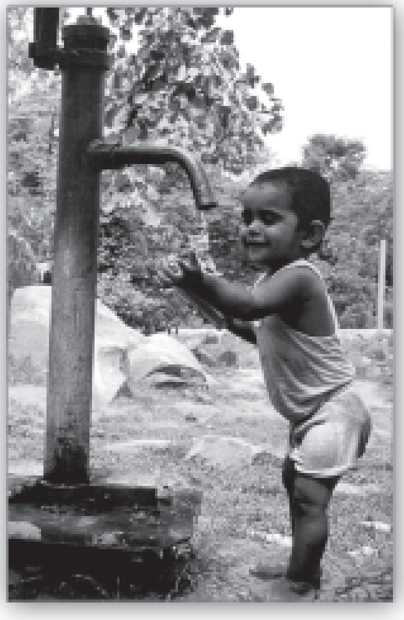

यह अध्याय बच्चों को स्वाभाविक रूप से सीखने वालों की तरह पहचाने जाने की आवश्यकता और बच्चों की अपनी गतिविधियों के फलस्वरूप पैदा होने वाले ज्ञान को स्थापित करता है। आम दिनचर्या में, विद्यालय से बाहर हम बच्चों की जिज्ञासा, खोजी व लगातार प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति का आनंद लेते हैं। बच्चे अपने आस-पास की दुनिया से बहुत ही सक्रिय रूप से जुड़े रहते हैं। वे खोज-बीन करते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं, चीजों के साथ कार्य करते हैं, चीजें बनाते हैं और अर्थ गढ़ते हैं। बचपन विकास और निरंतर बदलाव की अवस्था है जिसमें शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का पूर्ण विकास शामिल होता है। इस विकास में वयस्क समाज में समाजीकृत होना भी शामिल है जिसमें बच्चा संसार का ज्ञान ग्रहण करता है और नए ज्ञान का सृजन भी करता है। बच्चा अपने आप को दूसरों से जोड़ कर देखना सीखता है जिससे उसकी समझ बनती है, वह कार्य कर पाता है और रूपांतरण कर पाता है। समाज में हरेक नयी पीढ़ी को विरासत में संस्कृति एवं ज्ञान का एक भंडार मिलता है, जिसे वह अपनी गतिविधियों तथा समझ से समाहित करते हुए नया ज्ञान रचने की सार्थकता महसूस करता है।

2.1 सक्रिय विद्यार्थी की प्राथमिकता

समाज में मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा, विद्यार्थी में अपना ज्ञान स्वयं सृजित करने की स्वभाविक क्षमता को विकसित करती है। जिससे विद्यार्थी में अपने आस-पास के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से और विभिन्न कार्यों से जुड़ने की क्षमता बढ़ती है। इसके लिए ऐसे मौकों का मिलना बहुत ज़रूरी है जिससे विद्यार्थी नयी चीज़ों को आजमाएँ, जोड़-तोड़ करें, गलतियाँ करें और अपनी गलतियाँ खुद सुधारें। यह बात भाषा सीखने के लिए भी उतनी ही सच है जितनी किसी हस्तकौशल या विषय को सीखने के लिए। संस्थानों के तौर पर स्कूल सभी विद्यार्थियों को स्वयं के बारे में सीखने के, दूसरों व समाज के बारे में जानने के नए अवसर प्रदान करते हैं ताकि वे अपनी विरासत को समझ कर उससे जुड़ पाएँ, फिर चाहे उन्होंने किसी भी परिवार या समुदाय में जन्म लिया हो। स्कूल औपचारिक शिक्षा की जिन प्रक्रियाओं को संभव बनाता है वे विद्यार्थियों के जीवन में समझ व दुनिया से जुड़ने की नयी संभावनाएँ खोल सकती हैं।

पाठ्यचर्या का वर्तमान सरोकार बच्चों को सार्थक अनुभव देने वाली तथा समाहित करने वाली शिक्षा प्रदान करने का है। पाठ्यपुस्तक संस्कृति से दूर हटने का प्रयास भी है जिसके लिए यह भी ज़रूरी होगा कि हम विद्यार्थियों व सीखने की प्रक्रिया के बारे में जो सोचते हैं उसमें मूलभूत बदलाव लाएँ। अतः बाल-केंद्रित शिक्षा के तात्पर्य व निहितार्थ को गहराई से देखने की आवश्यकता है।

बाल-केंद्रित शिक्षा-शास्त्र का अर्थ है बच्चों के अनुभवों, उनके स्वरों और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना। इस प्रकार के शिक्षा-शास्त्र में बच्चों के मनोवैज्ञानिक विकास व अभिरुचियों के मद्देनजर शिक्षा को नियोजित करने की आवश्यकता होती है। इसीलिए शिक्षा की योजना ऐसी हो कि वह विशेषताओं व ज़रूरतों की विशाल विविधताओं के तहत भौतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक प्राथमिकताओं को सम्बोधित करे। हमारे स्कूल के शैक्षिक अभ्यास, सिखाने के कार्य और विद्यार्थियों के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तकें, उनके समाजीकरण और उनके सीखने में ग्रहणशीलता के गुण पर केंद्रित होते हैं। जबकि हमें उनकी सक्रियता व रचनात्मक सामर्थ्य को पोषित और संवर्द्धित करना चाहिए – उनके दुनिया से वास्तविक तरीकों से संबंध बैठाने, दूसरों से जुड़ने की उनकी मूल अभिरुचि या अर्थ ढूँढ़ने की जन्मजात रुचि, को पोषित करना चाहिए। सीखना अपने आप में एक सक्रिय व सामाजिक गतिविधि है। प्रायः 'अच्छे विद्यार्थी' की जिस धारणा को प्रोत्साहित किया जाता है उसमें अध्यापकों की आज्ञा का पालन, नैतिक चरित्र और अध्यापक के शब्दों को 'आधिकारिक' ज्ञान की तरह स्वीकारना शामिल है।

2.2 विद्यार्थी को संदर्भ में रखना

बच्चों की आवाज व अनुभवों को कक्षा में अभिव्यक्ति नहीं मिलती। प्रायः केवल शिक्षक का स्वर ही सुनाई देता है। बच्चे केवल अध्यापक के सवालों का जवाब देने के लिए या अध्यापक के शब्दों को दोहराने के लिए ही बोलते हैं। कक्षा में वे शायद ही कभी स्वयं कुछ करके देख पाते हैं। उन्हें पहल करने के अवसर भी नहीं मिलते हैं। किताबी ज्ञान को दोहराने की क्षमता के विकास के बजाए पाठ्यचर्या बच्चों को इतना सक्षम बनाए कि वे अपनी आवाज़ ढूँढ़ सकें, अपनी उत्सुकता का पोषण कर सकें, स्वयं करें, सवाल पूछें, जाँचें-परखें और अपने अनुभवों को स्कूली ज्ञान के साथ जोड़ सकें। इस उद्देश्य से पाठ्यचर्या का पुनर्उन्मुखीकरण हमारी सबसे बड़ी प्राथमिकताओं में से एक होना चाहिए ताकि अध्यापकों के प्रशिक्षण, स्कूलों की वार्षिक योजना, पाठ्यपुस्तकों की रूपरेखा, शैक्षणिक सामग्री व योजनाओं, मूल्यांकन व परीक्षा व्यवस्था में भी बदलाव लाया जा सके।

शारीरिक असुविधा के सामान्य स्रोत

- स्कूल पहुँचने के लिए छोटे बच्चों का दूर तक पैदल चलना।
- भारी स्कूली बस्ते।
- पढ़ने-लिखने के लिए सहायक किताबों सहित बुनियादी भौतिक संसाधनों की कमी
- घटिया फर्नीचर जो बच्चों की पीठ को पर्याप्त टेक नहीं देता और उन्हें अपनी टाँगें तथा पैर सिकोड़ कर बैठना पड़ता है।
- ऐसी समय-सारणी जो बच्चों को पढ़ाई के बीच पर्याप्त अवकाश नहीं देती कि बच्चे खेल सकें और कुछ बड़े बच्चों को तो उनके खेलने के समय से ही वंचित रखती है या फिर लड़कियों को पढ़ाई छोड़ने के लिए प्रोत्साहित करती है।
- विशेषकर लड़कियों के लिए शौचालयों व सफाई प्रबन्धों का अभाव
- शारीरिक दण्ड - मारना-पीटना या तकलीफदेह मुद्रा में खड़े या बैठे रहने की सजा देना।

बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है। हमारे स्कूल आज भी सभी बच्चों को ऐसा महसूस नहीं करवा पाते। सीखने का आनंद व संतोष के साथ रिश्ता होने की बजाए भय, अनुशासन व तनाव से संबंध हो तो यह सीखने के लिए अहितकारी होता है। आज यह आवश्यक है कि हमारे सभी बच्चे यह महसूस करें कि वे सभी, उनका घर, उनका समुदाय, उनकी भाषा और संस्कृति महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हें अनुभव के ऐसे संसाधनों के रूप में देखा जाए जिन्हें विद्यालय में जाँचा तथा विश्लेषित किया जाना है; उनकी विविध क्षमताओं को मान्यता मिले; यह माना जाए कि सभी बच्चों में सीखने की क्षमता है और सभी की ज्ञान, एवं कौशलों तक पहुँच हो और वयस्क समाज उन्हें सबसे अच्छा करने के योग्य माने। ज्यों-ज्यों हमारे स्कूलों का विस्तार हो रहा है और ज्यादा संख्या में समाज के सभी वर्गों के बच्चों को हम उनमें शामिल कर रहे हैं, हम इन आवश्यकताओं की महत्ता के प्रति अपेक्षाकृत अधिक जागरूक हो रहे हैं। दोपहर का भोजन, ढाँचागत सहायता और समावेशी शिक्षा के शिक्षाशास्त्रीय सरोकार वर्तमान में होने वाले सबसे महत्त्वपूर्ण विकासात्मक बदलावों में से हैं।

सभी प्रकार के शारीरिक दण्डों के विरुद्ध कड़ा रुख अपनाने की ज़रूरत है। स्कूल की सीमाओं को समाज के प्रति अधिक उदार होना होगा। साथ ही, पाठ्यचर्या का बोझ और परीक्षा संबंधी तनाव के सभी आयामों पर तत्कालिक ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्कूल और उसके बाद भी शारीरिक एवं भावनात्मक सुरक्षा हर प्रकार के सीखने की आधारशिला है।

2.3 विकास और सीखना

शैशवकाल से किशोरावस्था तक का समय बहुत तेज़ी से होने वाले विकास और परिवर्तन का होता है। सीखने व विकास के प्रति पाठ्यचर्या का ऐसा रुख होना चाहिए जो शारीरिक व मानसिक विकास के बीच अंतर्संबंध को देख सके और उनके विभाजन से ऊपर उठ सके। इसे व्यक्तिगत विकास व दूसरों से अंतःक्रिया के बीच के विभाजन से भी ऊपर उठना चाहिए।

2.3.1 सभी बच्चों का स्वस्थ शारीरिक विकास सभी प्रकार के विकास की पहली शर्त है। इसके लिए मूल आवश्यकताएँ; जैसे - पौष्टिक आहार, शारीरिक व्यायाम तथा अन्य मनोवैज्ञानिक-सामाजिक ज़रूरतों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

सभी बच्चों की स्वतंत्र खेलों, अनौपचारिक व औपचारिक खेलों, योग और खेल की गतिविधियों में सहभागिता उनके शारीरिक व मनो-सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। खेलकूद और योग से अर्जित योग्यताएँ सामूहिक-खेलों में शारीरिक बल, स्थूल गत्यात्मक कौशल (ग्रौस मोटरस्किल), नियंत्रण, आत्म-चेतना तथा समन्वयन की क्षमताओं

में सुधार लाती हैं। खेल के मैदानों, उपकरणों व नियमों का सरल अनुकूलन इन सभी गतिविधियों व खेलों को ऐसा बना सकता है कि सभी बच्चे इनमें शामिल हो सकें। बच्चे खेल, एथलेटिक्स, जिमनास्टिक, योग व प्रदर्शन कलाओं; जैसे– नृत्य कला आदि में दक्षता के उच्च स्तरों को भी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन जब ध्यान आनन्द से हट कर उपलब्धि पर चला जाए तो प्रशिक्षण ऐसे अनुशासन व अभ्यास की माँग करता है जो तनाव पैदा कर सकता है। सभी विद्यार्थी स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा की गतिविधियों में शामिल होने चाहिए तथा वे विद्यार्थी जो खेल-कूद में आगे बढ़ना चाहते हों उन्हें पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए।

शारीरिक विकास, विशेषकर छोटे बच्चों में मानसिक व संज्ञानात्मक विकास में मददगार है। सोचने व तर्क करने की क्षमता, स्वयं व दुनिया को समझने तथा भाषा का प्रयोग करने का सामर्थ्य अकेले व परस्पर मिलकर काम करने और दूसरों से अंतःक्रिया करने से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है।

2.3.2 संज्ञान का अर्थ है कर्म व भाषा के माध्यम से स्वयं और दुनिया को समझना। सार्थक अधिगम है ठोस चीजों एवं मानसिक द्योतकों को प्रस्तुत करने व उनमें बदलाव लाने की उत्पादक प्रक्रिया न कि जानकारी इकट्ठा कर उसे रटना। इस प्रकार भाषा (बोल-चाल या सांकेतिक) व विचार का परस्पर प्रगाढ़ संबंध है। यह प्रक्रिया शैशवकाल से आरंभ होती है और स्वतंत्र एवं मध्यस्थ गतिविधियों के माध्यम से विकसित होती है। आरम्भ में बच्चों की संज्ञानात्मक प्रवृत्ति 'यहाँ' और 'अभी' के बारे में जानने की होती है, वे ठोस अनुभवों पर तर्क और कार्य करते हैं। जैसे-जैसे उनकी भाषायी क्षमता और दूसरों के साथ काम करने के सामर्थ्य का विकास होता है, उनके कार्यों में अपेक्षाकृत अधिक जटिल विवेचना की संभावनाएँ खुलती जाती हैं जिनमें अमूर्तीकरण, नियोजन व वे उद्देश्य समाहित होते हैं जो तत्काल दिखाई नहीं देते। इस तरह काल्पनिक विचारों के साथ काम करने तथा संभावनाओं की दुनिया में विवेचन करने की क्षमता बढ़ती जाती है।

> निजी व सरकारी बहुत प्रकार के स्कूल हैं जिनमें विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों के बच्चे जाते हैं। कोठारी आयोग के अनुसार "भारत में हम जिस प्रकार की स्थिति देखते हैं, उसमें यह शिक्षा-प्रणाली की ज़िम्मेदारी है कि वह विभिन्न सामाजिक वर्गों और समूहों को निकट लाने और इस प्रकार एक समतापूर्ण तथा एकीकृत समाज के आविर्भाव में सहायक हो। किन्तु वर्तमान में, ऐसा करने के स्थान पर, स्वयं शिक्षा ही सामाजिक अलगाव को बढ़ाने तथा वर्गगत भेदभाव को बनाए रखने एवं उन्हें और भी बढ़ाने की ओर प्रवृत्त हो रही है ..... सबसे बुरी बात यह है कि यह अलगाव बढ़ता जा रहा है और जनता तथा वर्गो के बीच की खाई को और भी चौड़ा करता जा रहा है।" (1966:12)। क्या हम अपने बच्चों को यह बता रहे हैं कि हमारे लिए अलग-अलग बच्चों की अलग महत्ता है? यदि इसका उत्तर 'हाँ' है तो हमें कोठारी आयोग के उस स्वप्न को यथार्थ में बदलने के लिए आवश्यक सभी कदम तुरंत उठाने होंगे जिसमें उन्होंने एक ऐसी समान स्कूली व्यवस्था की परिकल्पना की थी जो बच्चों की सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि पर ध्यान दिए बिना पड़ोस के सभी बच्चों को शामिल कर सके। समान स्कूली व्यवस्था को शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसकी बुनियाद संवैधानिक आधार हो तथा जिसमें जाति, लिंग, वर्ग, स्थान आदि के भेदभाव के बिना समान शिक्षा उपलब्ध करवाने की सामर्थ्य हो। यह व्यवस्था वर्तमान में प्रचलित सभी प्रकार के स्कूलों (यथा सरकारी, स्थानीय निकाय द्वारा संचालित या निजी) पर लागू हो, जिनका यह दायित्व हो कि वे बुनियादी संसाधन और शिक्षण मानकों को सुनिश्चित करें तथा स्कूल के आसपास रहने वाले सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा उपलब्ध करवाएँ।

अतः अवधारणात्मक विकास संबंधों को समृद्ध और प्रगाढ़ बनाने व नए अर्थों को प्राप्त करने की एक निरंतर प्रक्रिया है। इसके साथ उन सिद्धांतों का भी विकास होता है जो बच्चे प्राकृतिक व सामाजिक दुनिया के बारे में बनाते हैं। इसमें दूसरों के साथ अपने रिश्ते के संबंध में सिद्धांत भी शामिल होते हैं और ये सिद्धांत उन्हें यह बताते हैं कि चीजें जैसी हैं वैसी क्यों हैं, कारण व कारक के बीच क्या संबंध है और कार्य व निर्णय लेने के क्या आधार हैं। नज़रिए, भावनाएँ और आदर्श, संज्ञानात्मक विकास के अभिन्न हिस्से हैं और भाषा विकास, मानसिक चित्रण, अवधारणाओं व तार्किकता से इनका गहरा संबंध है। जैसे-जैसे बच्चों की अधिसंज्ञानात्मक क्षमताएँ विकसित होती हैं, वे अपनी आस्थाओं के प्रति अधिक जागरूक होते जाते हैं और इस तरह अपने सीखने को स्वयं नियंत्रित व नियमित करने में सक्षम हो जाते हैं।

- सभी बच्चे स्वभाव से ही सीखने के लिए प्रेरित रहते हैं और उनमें सीखने की क्षमता होती है।
- अर्थ निकालना, अमूर्त सोच की क्षमता विकसित करना, विवेचना व कार्य, अधिगम की प्रक्रिया के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू हैं।
- बच्चे व्यक्तिगत स्तर पर एवं दूसरों से भी विभिन्न तरीकों से सीखते हैं — अनुभव के माध्यम से, स्वयं चीजें करने व स्वयं बनाने से, प्रयोग करने से, पढ़ने, विमर्श करने, पूछने, सुनने, उस पर सोचने व मनन करने से तथा गतिविधि या लेखन के ज़रिए अभिव्यक्त करने से। अपने विकास के मार्ग में उन्हें इन सभी तरह के अवसर मिलने चाहिए।
- बच्चे मानसिक रूप से तैयार हों, उससे पहले ही उन्हें पढ़ा देना, बाद की अवस्थाओं में उनमें सीखने की प्रवृत्ति को प्रभावित करता है। उन्हें बहुत से तथ्य 'याद' तो रह सकते हैं लेकिन संभव है कि वे न तो उन्हें समझ पाएँ, न ही उन्हें अपने आसपास की दुनिया से जोड़ पाएँ।
- स्कूल के भीतर व बाहर, दोनों जगहों पर सीखने की प्रक्रिया चलती है। इन दोनों जगहों में यदि संबंध रहे तो सीखने की प्रक्रिया पुष्ट होती है। कला और कार्य, समग्र सीखने के अवसर प्रदान करते हैं जो सौंदर्यबोध से पुष्ट होता है। ऐसे अनुभव भाषायी रूप से ज्ञात चीजों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं विशेषकर नैतिक मुद्दों में ताकि प्रत्यक्ष अनुभवों से सीखा जा सके और जीवन में समाहित किया जा सके।
- सीखने की एक उचित गति होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी अवधारणाओं को रट कर और परीक्षा के बाद सीखे हुए को भूल न जाएँ बल्कि उसे समझ सकें और आत्मसात कर सकें। साथ ही, सीखने में विविधता व चुनौतियाँ होनी चाहिए ताकि वह बच्चों को रोचक लगे और उन्हें व्यस्त रख सके। ऊब महसूस होना इस बात का संकेत है कि वह कार्य बच्चा अब यांत्रिक रूप से दोहरा रहा है और उसका संज्ञानात्मक मूल्य खत्म हो गया है।
- सीखना किसी की मध्यस्थता या उसके बिना भी हो सकता है। प्रत्यक्ष रूप से सीखने से सामाजिक संदर्भ व संवाद, विशेषकर अधिक सक्षम लोगों से संवाद विद्यार्थियों को उनके स्वयं के उच्च संज्ञानात्मक स्तर पर कार्य करने का मौका देते हैं।

2.3.3 किशोरावस्था अस्मिता के विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण समय है। स्वयं के बारे में समझने की प्रक्रिया का संबंध शारीरिक बदलावों और वयस्क के रूप में सामाजिक और शारीरिक

माँगों से संगति बिठाने से है। स्वतंत्रता, घनिष्ठता, मित्रमंडली पर निर्भरता आदि कुछ ऐसे सरोकार हैं जिनको पहचानने और उनसे निपटने की दिशा में उचित सहयोग देने की ज़रूरत है। बाहर की दुनिया तथा व्यक्ति की उस तक पहुँच और वहाँ आने जाने की स्वतंत्रता व्यक्तित्व निर्माण को प्रभावित करती है। लड़कियों के विषय में यह तथ्य विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि प्रायः सामाजिक परंपराएँ उन्हें चारदीवारी के भीतर रहने को बाध्य कर देती हैं। यही परंपराएँ लड़कों के लिए ठीक इसके विपरीत रूढ़ि को प्रोत्साहित करती हैं जो लड़कों को बाहरी व शारीरिक क्रियाकलापों से जोड़ती हैं। इस तरह की रूढ़ियाँ किशोरावस्था में अधिक प्रबल हो जाती हैं जो शरीर के बढ़ने का समय होता है। इन शारीरिक बदलावों का प्रभाव किशोर जीवन के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर पड़ता है। अधिकतर किशोर इन परिवर्तनों का सामना बिना पूर्ण ज्ञान एवं समझ के करते हैं जो उन्हें खतरनाक स्थितियाँ जैसे यौन रोगों, यौन दुर्व्यवहार, एचआईवी/एड्स एवं नशीली दवाओं के सेवन का शिकार बना सकती हैं।

यह समय होता है जब आत्मसात किए गए विचारों व मानदण्डों पर प्रश्न उठाया जाता है, साथ ही अपने दोस्तों का मत बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाता है। किशोरों की इन आवश्यकताओं की पहचान कर उनको जीवन में संकट से निपटने के कौशल सीखने की दिशा में सामाजिक और भावनात्मक सहारा दिया जा सकता है। साथ ही, मित्रों के दबाव और लिंग संबंधी प्रचलित मान्यताओं से निपटने की दिशा में भी उन्हें तैयार किया जा सकता है। इस प्रकार के सहयोग के अभाव में इन बदलावों को लेकर भ्रम और नासमझी की स्थिति पैदा हो सकती है और इससे किशोरों की अकादमिक और अन्य गतिविधियाँ प्रभावित हो सकती हैं।

2.3.4 यह महत्त्वपूर्ण है कि कक्षा में सभी बच्चों के लिए समावेशी माहौल तैयार किया जा सके। विशेषकर उनके लिए जिनके हाशिए पर धकेले जाने का खतरा हो। उदाहरण के लिए, वे विद्यार्थी जिनमें कुछ असमर्थताएँ हैं। विद्यार्थियों या विद्यार्थी-समूहों को अपंग/असमर्थ/निर्योग्य शब्दों से संबोधित करने से उनमें एक प्रकार की कुंठा और असहायता की भावना घर कर जाती है। इससे उन कठिनाइयों पर परदा पड़ जाता है, जिसका सामना विद्यार्थियों को विविध सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण से आने के कारण या कक्षा में अपर्याप्त शिक्षण-विधि अपनाने के कारण करना पड़ता है। इन बच्चों के भी अन्य बच्चों के समान अधिकार होते हैं। विद्यार्थियों के बीच मतभेदों को समस्या के रूप में न देखकर शिक्षण के सहयोगी संसाधन के रूप में देखा जाना चाहिए। शिक्षा में समावेश समाज में समावेश का ही एक घटक है।

इसीलिए स्कूलों का यह दायित्व बनता है कि वे एक ऐसी उदार पाठ्यचर्या को अपनाएँ जो सभी विद्यार्थियों के लिए सुलभ हो। यह दस्तावेज़ ऐसी पाठ्यचर्या की योजना बनाने की दिशा में आरंभ-बिंदु हो सकता है जो विद्यार्थियों या विद्यार्थी-समूहों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुकूल हो। पाठ्यचर्या में उचित चुनौती और विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त अवसर हों, ताकि वे अध्ययन में सफलता पा सकें और अपनी संभावनाओं का पूर्ण विकास कर सकें। कक्षा में शिक्षण और अध्यापन की प्रक्रिया इस प्रकार नियोजित हो कि वह विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं को पूरा कर सके। शिक्षकों को ऐसी सकारात्मक कार्यनीति अपनाने की आवश्यकता है ताकि असमर्थ समझे जाने वाले विद्यार्थियों सहित सबको शिक्षा का माहौल मिले। ऐसा सहयोगी शिक्षकों तथा स्कूल के बाहर की संस्थाओं की मदद से किया जा सकता है।

2.4 पाठ्यचर्या एवं व्यवहार के लिए निहितार्थ

2.4.1 ज्ञान सृजन के लिए अध्यापन

रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में, सीखना ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया है। विद्यार्थी सक्रिय रूप से पूर्व प्रचलित विचारों में उपलब्ध सामग्री/गतिविधियों के आधार पर अपने लिए ज्ञान की रचना करते हैं (अनुभव)। उदाहरण के लिए, यातायात व्यवस्था को पाठ या चित्र या दृश्य सामग्री का उपयोग करते हुए पढ़ाने तथा उस पर विद्यार्थियों में चर्चा कराने से उनमें यातायात व्यवस्था संबंधी ज्ञान के निर्माण में मदद की जा सकती है। आरंभिक निर्मिति (मानसिक चित्रण) सड़क यातायात के विचार पर आधारित हो सकती है और ग्रामीण इलाके का कोई विद्यार्थी बैलगाड़ी के इर्द-गिर्द अपने विचार गढ़ सकता है। विद्यार्थी दी गई गतिविधियों (अनुभव) के माध्यम से बाह्य यथार्थ (यातायात व्यवस्था) की मानसिक छवि गढ़ सकते हैं। विचारों की रचना एवं पुनर्रचना उनके विकास के आवश्यक लक्षण हैं। उदाहरण के लिए, यातायात व्यवस्था पर आरंभिक विचार सड़क यातायात पर निर्मित होगा। और बाद में यह दूसरे प्रकार के यातायात जैसे समुद्र और वायु यातायात को समाहित करने के लिए विभिन्न गतिविधियों का उपयोग करते हुए पुनर्रचित होगा। विद्यार्थियों को बाद में उपयुक्त गतिविधियों के माध्यम से यातायात व्यवस्था और मानव जीवन/अर्थव्यवस्था के बीच संबंधों के बारे में बताया जा सकता है (कारण-प्रभाव)। हालांकि, इस ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया का एक सामाजिक पहलू यह भी है कि जटिल कार्य के लिए आवश्यक ज्ञान समूह परिस्थितियों में निहित होता है। इस संदर्भ में, सहयोगी शिक्षण के लिए अर्थ की बहुलता और बाह्य यथार्थ के अंदरूनी प्रतिनिधित्व को पर्याप्त जगह दिए जाने की ज़रूरत है। निर्मिति यह संकेत देती है कि हर विद्यार्थी व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर अर्थ का निर्माण करता है। अर्थ निर्माण सीखना है। रचनात्मक परिप्रेक्ष्य ऐसी रणनीतियाँ उपलब्ध करवाता है जो सबके द्वारा सीखना को प्रोत्साहित करता है।

बच्चों के संज्ञान में अध्यापकों की भूमिका भी बढ़ सकती है यदि वे ज्ञान निर्माण की उस प्रक्रिया में ज्यादा सक्रिय रूप से शामिल हो जाएँ जिसमें बच्चे व्यस्त हैं। सीखने की प्रक्रिया में व्यस्त एक बालक या बालिका अपने ज्ञान का सृजन खुद करता/ती है। बच्चों को ऐसे प्रश्न पूछने की अनुमति देना जिनसे वे स्कूल में सिखाई जाने वाली चीज़ों का संबंध बाहरी दुनिया से स्थापित कर सकें, उन्हें एक ही तरीके से उत्तर रटने और देने की बजाए अपने शब्दों में जवाब देने और अपने अनुभव बताने के लिए प्रोत्साहित करना — ये सभी बच्चों की समझ विकसित करने में छोटे किन्तु बेहद महत्त्वपूर्ण कदम हैं। 'चतुर अनुमान' को एक कारगर शिक्षा शास्त्रीय साधन के रूप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अपने रोजमर्रा के जीवन या 'मीडिया एक्सपोजर' से प्रायः बच्चों को एक बोध तो होता है लेकिन वे उसे उस प्रकार मुखरित नहीं कर पाते जो शिक्षक को पसंद हो। जो हम जानते हैं और जो लगभग जानते हैं, के बीच के 'क्षेत्र' में नए ज्ञान का सृजन होता है। प्रायः ऐसा ज्ञान कौशलों का रूप ले लेता है जो स्कूल के बाहर घर अथवा समुदाय में परिष्कृत होते हैं। ऐसे सभी प्रकार के ज्ञान व शिल्पों का आदर होना चाहिए। एक संवेदनशील और समझदार अध्यापक यह जानता है और बच्चों को भली भांति चुने हुए कार्यों व प्रश्नों में व्यस्त कर पाता है ताकि वे अपने विकास की क्षमता का अनुभव कर सकें।

पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना, वाद-विवाद, व्यावहारिक प्रयोग व ऐसा चिंतन जिससे सिद्धांत बन सकें और विचार/स्थितियों की रचना हो सके ये सभी बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करते हैं। स्कूलों द्वारा ऐसे अवसर प्रदान किए जाने चाहिए ताकि बच्चे प्रश्न पूछ कर और चर्चा एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात करें

या नए विचार रचें। इस प्रक्रिया के ज़रिए विभिन्न अवधारणाओं, एवं कौशल सीखने के लिए व स्थितियों तक पहुँचने के लिए बच्चों की सक्रिय भूमिका में चुनौती का तत्व निर्णायक है। एक विशेष आयु-वर्ग के लिए जो चुनौतीपूर्ण है, वह दूसरे आयु-वर्ग के लिए सरल व अरोचक हो सकता है और किसी अन्य आयु-वर्ग के लिए कतई परोक्ष और उबाऊ।

अतः प्रायः 'वस्तुपरक' होने के नाम पर अध्यापक लचीलेपन और रचनात्मकता की बलि दे देता है। प्रायः निजी व सरकारी दोनों स्कूलों के अध्यापक इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सभी बच्चों को प्रश्नों के एकसमान उत्तर देने चाहिए। अन्य उत्तरों को स्वीकार न करने के लिए यह तर्क दिया जाता है कि 'वे ऐसा उत्तर नहीं दे सकते जो पाठ्यपुस्तक में नहीं है' या 'हमने अध्यापक कक्ष में इसकी चर्चा की और निश्चय किया कि हम केवल इसी उत्तर को सही मानेंगे' या फिर 'इस प्रकार तो बहुत सी किस्म के जवाब होंगे, क्या हमें सभी तरह के जवाबों को सही मानना चाहिए?' ऐसे तर्क पढ़ाई के अर्थ का उपहास बना देते हैं और बच्चों व माता-पिता को और भी आश्वस्त कर देते हैं कि स्कूल अतार्किक रूप से सख्त है। हमें वाकई इस बात पर सोचना चाहिए कि हम हमेशा बच्चों से सवाल के जवाब देने के लिए ही क्यों कहते हैं। दिए गए उत्तरों के लिए प्रश्नों की एक सूची बनाना भी सीखने का वैध परीक्षण हो सकता है।

2.4.2 अंतःक्रिया का मूल्य

सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है आसपास के वातावरण, प्रकृति, चीजों व लोगों से कार्य व भाषा दोनों के माध्यम से अंतःक्रिया करना। इधर-उधर घूमना, खोजना, अकेले काम करना या अपने दोस्तों या वयस्कों के साथ काम करना, भाषा को पढ़ना, अभिव्यक्त करना, पूछने और सुनने के लिए प्रयोग करना, ये कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ हैं जिनसे सीखना संभव होता है। इसलिए जिस संदर्भ में यह अधिगम होता है उसकी प्रत्यक्षतः संज्ञानात्मक महत्ता है।

स्कूली शिक्षा में अधिगम का एक बड़ा हिस्सा अब भी व्यक्ति-आधारित है (हालांकि वैयक्तिक नहीं है)। अध्यापकों को 'ज्ञान' हस्तांरित करने वालों के रूप में देखा जाता है यद्यपि ज्ञान को हम जानकारी मान बैठते हैं। अध्यापकों को उन अनुभवों का आयोजक समझा जाता है जो बच्चों के सीखने में सहायक होते हैं। लेकिन अध्यापकों के साथ, दोस्तों के साथ, अपने से छोटे व बड़े बच्चों/लोगों के साथ संपर्क-संवाद भी सीखने की अनेक संभावनाएँ खोल सकता है। दूसरों की संगत में सीखना पारस्परिक अंतःक्रिया करने की ही प्रक्रिया है। इस तरह का अधिगम तब और भी रोचक व परिपुष्ट होता है जब स्कूल विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चों को प्रवेश देता है।

प्रश्न तैयार करना

यदि उत्तर 5 है तो प्रश्न क्या हो सकते हैं? यहाँ उत्तर दिए गए हैं–

- चार और एक मिल कर क्या बनता है?
- यदि तैंतीस में से सत्ताईस जमा एक को निकाल लिया जाए तो क्या शेष रहेगा?
- आप कितनी बर्फी चाहते हैं?
- मैं अपनी नानी के घर रविवार को पहुँची और गुरुवार को वहाँ से निकली। वहाँ मैं कितने दिन रही?
- क,ख,ग आए, फिर उनमें घ, ङ, च, छ शामिल हो गए, फिर क और च चले गए फिर च वापस आया और ख चला गया। अंततः कितने शेष बचे?

यदि उत्तर है, "वह लाल थी/था," तो प्रश्न क्या होंगे?

- फूल का रंग क्या था?
- तुमने पत्र को उस बक्से में क्यों डाला ?
- वह अचानक ट्रैफिक लाइट के पास क्यों रुकी ?

रचनात्मक अधिगम की परिस्थिति

प्रक्रिया	विज्ञान	भाषा
	परिस्थिति विद्यार्थी स्तनपायी पर एक लेख पढ़कर अलग-अलग स्थानों पर उनके जीवन को लेकर दृश्यावली भी देख सकते हैं। इस प्रकार की घटनाओं या गतिविधियों में उनको झुंड में चलते या जल में दिखाया जा सकता है। उनको चरते हुए, शिकार पर हमला करते हुए, जन्म देते हुए और खतरे के समय एक होते हुए या इससे जुड़ी गतिविधियाँ दिखाई जा सकती हैं।	*परिस्थिति* शिक्षार्थी 'काबुलीवाला' कहानी पढ़ते हैं। बाद में, उनको उसकी पृष्ठभूमि से जुड़े कुछ रेखाचित्र और कहानी के कुछ दृश्य संक्षिप्त वर्णन के साथ दिए जाएँ। एकाध विद्यार्थी उसके कुछ दृश्यों के रेखाचित्र भी बना सकते हैं।
अवलोकन	विद्यार्थी स्तनपायियों के प्रमुख व्यवहारों या प्रमुख घटनाओं के आधार पर एक टिप्पणी तैयार कर सकते हैं।	विद्यार्थी उन दृश्यों को घटित होते हुए देखते हैं।
संदर्भीकरण	वे अपने विश्लेषण को पाठ से मिलाते हैं।	वे कहानी के पाठ की उसके रेखाचित्र से संबद्धता बिठा कर देखें।
संज्ञानात्मक शिक्षार्थन	शिक्षक यह बताते हैं कि वे किस प्रकार एक स्तनपायी का उदाहरण लेकर इस प्रकार की जानकारी की व्याख्या और विश्लेषण कर सकते हैं।	दिखाए गए एक दृश्य को आधार बनाकर शिक्षक बताता है कि किस प्रकार कहानी के वाचन और आधार सामग्री को समेकित करके पढ़ा जाए।
सहयोग	विद्यार्थी समूह बनाकर कक्षाभ्यास करते हैं, जबकि शिक्षक उनकी इसमें मदद करते हैं।	विद्यार्थी समूह में व्याख्या तैयार करते हैं। शिक्षक इसमें उनका मार्ग दर्शन करते हैं।
निर्वचन सृजन	विद्यार्थी विश्लेषण करे और पानी में और धरती पर रहने वाले स्तनधारी जीवों के बारे में बनायी अपनी प्राक्कल्पना को प्रमाणित करने के लिए प्रमाण उत्पन्न या प्रस्तुत करें	वे विश्लेषण करें और कहानी का अपना निर्वचन उत्पन्न करें।
बहुविध व्याख्या	वे व्याख्या प्रस्तुत करते हैं और अपने विश्लेषण और पाठ की मदद से समूह के अंदर और बाहर अपने तर्क की रक्षा करते हैं। साक्ष्य और बहसों द्वारा वे कई तरह से अपनी व्याख्या तक पहुँचने के उत्तर पाते हैं।	व्याख्या की समूह के अंदर और बाहर तुलना कर वे यह समझ विकसित करते हैं कि कैसे 'काबुलीवाला' कहानी पर अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं।
बहुविध अभिव्यक्तियाँ	इस प्रक्रिया में आगे-पीछे जाते हुए और हर संदर्भ को स्तनपायियों के विभिन्न व्यवहारों और घटनाओं से जोड़ने के क्रम में विद्यार्थी यह देखते हैं कि इसमें सामान्य सिद्धांत यह है कि वे जो भी कर रहे हैं वह व्यक्त हो रहा है।	पाठ, उससे जुड़े रेखाचित्रों और अन्य प्रभावों के आधार पर विद्यार्थी यह देखते हैं कि एक ही प्रकार के विषय और चरित्रों को विविध ढंग से दिखाया जा सकता है।

शिक्षक की भूमिका : इस संदर्भ में, शिक्षक एक उत्प्रेरक है जो विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के लिए और ज्ञान सृजन के क्रम में व्याख्या और विश्लेषण के लिए प्रोत्साहित करता है।

प्राथमिक स्कूली शिक्षा के प्रारंभिक सालों में सामूहिक कार्य के क्षेत्र में एक नयी शुरुआत की गई है। माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्कूलों में भी समूह में की जाने वाली परियोजनाओं और गतिविधियों को पढ़ाई का एक अंग बनना चाहिए। इस सामूहिक अधिगम के आकलन और मूल्यांकन के भी तरीके हैं। स्कूल, विभिन्न आयु के बच्चों के समूह बना कर उन्हें साथ-साथ काम करने के लिए परियोजना कार्य भी दे सकते हैं। इन मिश्रित समूहों में बच्चे एक-दूसरे से समूह में कार्य करना और सामाजिक मूल्यों के बारे में काफी कुछ सीख सकते हैं। दूसरे लोगों की संगति में हमको बड़े कामों में भाग लेने का मौका मिलता है जहाँ हम अपनी क्षमता से परे जाकर भी काम कर सकते हैं और वह काम करने का भी प्रयास कर सकते हैं जो हम पूरी तरह नहीं जानते। समूह में काम सीखना, जिम्मेदारी लेना और जो काम दिया गया है उसे पूरा करना — ये सभी ज्ञान प्राप्त करने के ही नहीं बल्कि कलाएँ, और कौशल इत्यादि सीखने के भी महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। बहु-श्रेणीय कक्षा की स्थिति में शिक्षाशास्त्रीय नज़र से यह एक अच्छी पाठ्यचर्या बनाने की उम्दा तरकीब हो सकती है क्योंकि तब एक ही गतिविधि का विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

2.4.3 शैक्षिक अनुभवों की रूपरेखा बनाना

शैक्षिक कार्य की गुणवत्ता, उससे सीख पाने की योग्यता और विद्यार्थी के लिए उसकी महत्ता को प्रभावित करती है। वे अभ्यास जो बहुत सरल होते हैं, या बहुत कठिन, जो बार-बार एक ही बात यांत्रिक रूप से दोहराते हैं, जो पाठ्यपुस्तक को याद करने पर आधारित होते हैं, जो बच्चे को आत्माभिव्यक्ति व प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं देते, शिक्षक के जाँच कार्य पर ही निर्भर रहते हैं, वे बच्चे को आज्ञापालन करने वाली निष्क्रिय कठपुतली बना देते हैं। शिक्षार्थी अपने विचारों व विवेक को महत्व देना नहीं सीखते हैं। वे यह सीखते हैं कि ज्ञान दूसरों के द्वारा बनाया जाता है और उन्हें सिर्फ ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए। इसीलिए अध्यापकों पर यह जिम्मेदारी आ जाती है कि जो बच्चे स्वाभाविक रूप से शिक्षा के प्रति उत्साहित नहीं लगते उन्हें वह प्रोत्साहित करें। शिक्षार्थी नियंत्रित होना स्वीकार कर लेते हैं और यह चाहने लगते हैं कि उन्हें नियंत्रण में रहना आए। यह अंततः संज्ञानात्मक आत्म-चिंतन और उस लचीलेपन के विकास के लिए हानिकारक है जो दरअसल अधिगम से विद्यार्थी को सशक्त बनाने के लिए आवश्यक है। इस शैक्षिक वातावरण में बढ़ते हुए कई विद्यार्थी सातवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते आत्म-विश्वास, स्वयं को अभिव्यक्त करने और स्कूली अनुभवों का अर्थ निकालने की क्षमता खो बैठते हैं। वे बार-बार परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए उसी यांत्रिक रटन्त विद्या का सहारा लेते हैं।

जबकि स्वतंत्र विचार प्रक्रिया और हल करने के विविध तरीकों को प्रोत्साहित करने वाले चुनौतीपूर्ण कार्य शिक्षार्थियों में स्वतंत्रता, रचनात्मकता और आत्मानुशासन को प्रोत्साहित करते हैं। 'क्विज' संस्कृति को बढ़ावा देने के बदले जहाँ, तत्काल सही जवाब जानना ज़रूरी होता है, हमें विद्यार्थियों को गहन व सार्थक अधिगम पर समय व्यतीत करने देना चाहिए।

सीखने के वे कार्य जो यह सुनिश्चित करने के लिए रचे गए हैं कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य स्रोतों से भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित होंगे, इस दर्शन को संप्रेषित करते हैं कि बच्चे खुद ही खोज करके एवं प्रमाण जुटा के सीखते हैं एवं ज्ञान का सृजन करते हैं और अध्यापक या पाठ्यपुस्तक का ज्ञान पर प्रभुत्व नहीं होता है। बच्चे अपने खुद के अनुभवों से, घर एवं समुदाय के सदस्यों के अनुभवों से, पुस्तकालयों से और स्कूल के बाहर अन्य स्रोतों से ज्ञान तलाश सकते हैं। इस संदर्भ में अधिगम की दृष्टि से सांस्कृतिक विरासत स्थल बेहद महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। न केवल इतिहास बल्कि सभी विषयों के

शिक्षकों को पुरातत्व महत्त्व के स्थलों के प्रति बच्चों में एक आदरभाव और उनकी महत्ता समझने व उनका अन्वेषण करने की इच्छा को पोषित करना चाहिए।

हाल के वर्षों में कक्षा एक और दो में वातावरण और पाठ्यचर्या की रूपरेखा को सुधारने के प्रयास हुए हैं। जहाँ एक ओर इनको पुनः विचार करके मजबूत बनाने की ज़रूरत है, वहीं बड़े बच्चों के लिए ऐसे शैक्षिक अनुभवों को तैयार करने के प्रश्नों से जूझने की भी ज़रूरत है, जो बच्चों को अवधारणाएँ समझने और अपना ज्ञान रचने में मदद कर सकें। अब हम 'तथ्य-केंद्रित ज्ञान' पर अब तक दिए जाने वाले बल में एक बदलाव देख रहे हैं, लेकिन ज़रूरी यह भी है कि अध्यापकों का प्रशिक्षण, कक्षागत व्यवहार का नियोजन, पाठ्यपुस्तक विकास और मूल्यांकन की व्यवस्था इस बदलाव को निर्णायक रूप से प्रभावित करे। आवश्यकता है कि नियोजन में लचीलापन, पाठ्यपुस्तकों को विषय आधारित सीखने के अनुसार ढालने की महत्ता समझी जाए ताकि तंग अपरिवर्तनीय सीमाओं से बाहर निकलने के एन.पी.ई.-86 के उद्देश्य की ओर बढ़ा जा सके। इसके लिए शिक्षकों में क्षमताएँ विकसित करना व आत्मविश्वास लाना ज़रूरी है ताकि वे स्वतंत्र रूप से बच्चों के सीखने की प्रक्रिया के अनुसार अपने अध्यापन की योजना बना सकें। मौजूदा शैक्षिक सुधार अब भी केंद्रवाद से ग्रस्त है। प्रभावी विकेन्द्रीकरण तभी संभव होगा जब खंड और संकुल संदर्भ केंद्रों की भागीदारी बढ़े, स्थानीय संदर्भ व्यक्ति उपलब्ध हों और अध्यापकों के पास संसाधन और प्रासंगिक सामग्री भी मौजूद हो।

2.4.4 नियोजन के उपागम

हमारी शिक्षा आज भी सीमित 'पाठ योजना' पर आधारित है जिसका लक्ष्य हमेशा परिमेय 'आचरणों' को हासिल करना होता है। इस दृष्टिकोण से बच्चे ऐसे प्राणी माने जाते हैं जिन्हें हम प्रशिक्षित कर सकते हैं या फिर एक कंप्यूटर के समान जिन्हें हम अपने हिसाब से कार्यबद्ध कर सकते हैं। इसीलिए 'परिणामों' पर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाता है। ज़ोर इस बात पर रहता है कि ज्ञान को जानकारी के टुकड़ों के रूप में प्रस्तुत किया जाए जिससे बच्चे प्रोत्साहित होने के बाद उन्हें सीधे पाठ से याद कर सकें। अंत में यह देखने के लिए बच्चे के मूल्यांकन पर भी बड़ा ज़ोर रहता है कि बच्चे ने याद किया कि नहीं। जबकि ज़रूरत यह है कि हम बच्चे को हमेशा ज्ञान सृजन में तल्लीन रखने की आवश्यकता को समझे। केवल गणित, विज्ञान, भाषा व समाज विज्ञान जैसे ज्ञानात्मक विषयों के बारे में ही यह सच नहीं है बल्कि मूल्यों, अभिरुचियों और कौशलों के बारे में भी यह बात उतनी ही सटीक है।

एक शिक्षार्थी को देखने का यह परिप्रेक्ष्य बहुत स्पष्ट लग सकता है लेकिन आज भी अनेक अध्यापक, परीक्षक व पाठ्यपुस्तक लेखक इस पर विश्वास नहीं कर पाते कि इस आदर्श को वास्तविकता में बदला जा सकता है।

- 'गतिविधि' शब्द आज अधिकतर प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के रजिस्टर का अंग बन चुका है, लेकिन अक्सर हम यह पाएंगे कि हरबर्ट द्वारा दी गई पाठ योजना पर परियोजनाओं की कलमभर लगाई गई होती है और वे पाठ के अन्त में दिए गए परिणामों से अभिप्रेरित होती हैं। योग्यता और सक्षमता की बातें अधिक होने लगी हैं लेकिन ये योग्यताएँ अभी तक 'परिणाम' की तरह ही 'पाठ' में शामिल होती हैं। जबकि ज़रूरत यह है कि शिक्षक हर विषय पर तीन-चार 'सत्र' की इकाई योजना बनाएँ। समझ और योग्यताओं का विकास भी तभी संभव है जब विभिन्न स्थितियों में और विभिन्न तरीकों से उनका प्रयोग करने के अवसर बार-बार मिलें। जानकारी, समझ और

अनुभवों का नियोजन

किसी प्रक्रिया को यथार्थ में होता देखने की प्रक्रिया, मान लीजिए बीज का अंकुरण या दूध इकट्ठा करने की विभिन्न अवस्थाएँ, या फिर किसी डेयरी उत्पाद के बनने व पैक होने की प्रक्रिया देखना।

किसी ऐसे अभ्यास में भाग लेना जिसमें मस्तिष्क व शरीर दोनों का व्यायाम शामिल हो, मसलन किसी कथानक पर एक नाटक तैयार करना व उसका मंचन करना।

एक ऐसे अनुभव पर विचार-विमर्श की मानसिक प्रक्रिया जिससे बच्चा गुजरता है (उदाहरणतः परिवार या समाज में व्याप्त लिंग भेद या फिर संख्याओं का मानसिक खेल।)

कोई चीज बनाना, मसलन चरखियों का प्रयोग करके कुछ भार उठाने का यंत्र बनाना।

इस अनुभव के बाद, अध्यापक इस पर चर्चा, भाषण, लेखन, चित्रकला या प्रदर्शनी करवा सकते हैं। वे बच्चों के उन प्रश्नों की पहचान कर सकते हैं जिनका जवाब बच्चे चाहते हैं।

शिक्षक पाठ्यपुस्तक की जानकारी के साथ अन्य संदर्भ जोड़कर अनुभव को पुष्ट और गहन बना सकते हैं।

इस प्रकार के अनुभव और अनुभव के बाद की गतिविधियाँ स्कूली शिक्षा के किसी भी स्तर पर मूल्यवान और कारगर हो सकती हैं। समय के साथ-साथ इन अनुभवों की प्रकृति, प्रकार व जटिलता को बदलने की ज़रूरत होगी। भाषा ऐसे अनुभवों को संयोजित करने का आधार होती है इसीलिए अनुभव के स्तर व भाषा के विकास में समन्वय भी आवश्यक हो जाता है।

दक्षता के विकास का मूल्यांकन इकाई के अंत में और फिर उसके बाद की किसी निश्चित तारीख पर भी हो सकता है, लेकिन दक्षताओं के मूल्यांकन का चक्र लंबा होना चाहिए।

- गतिविधियाँ शिक्षक को मौका देती हैं कि वे हर बच्चे पर ध्यान दे सकें और काम के दौरान बच्चे की ज़रूरत और रुचि के अनुसार बदलाव ला सकें। शिक्षक कक्षा के कार्य में बच्चों और अपेक्षाकृत बड़े बच्चों को भी शामिल करने के बारे में सोच सकते हैं। इस तरह की विविधता कक्षा में चल रहे कार्यों को बहुत रोचक बना देती है। इससे अध्यापक विशिष्ट ज़रूरतों वाले बच्चों की तरफ विशेष ध्यान भी दे सकेंगे और कक्षा में ऐसा भी नहीं लगेगा कि कुछ बच्चे अपवाद हैं। शिक्षक आज भी प्रत्येक बच्चे की पढ़ाई में पर्याप्त रूप से शामिल नहीं हो पाते। सामान्यतः बच्चों की पहचान सामूहिक रूप से होती है, जो बच्चे या तो 'स्टार' होते हैं या फिर 'कठिन' उन पर ही अधिक ध्यान जाता है। परन्तु इस प्रकार की गतिविधि के माध्यम से पढ़ाए जाने से सभी बच्चों को लाभ होगा।
- समावेशी कक्षा के शिक्षक की पाठ योजना और इकाई योजना को इस ओर इंगित करना चाहिए कि शिक्षक बच्चों की विभिन्न ज़रूरतों के अनुसार कक्षा में जारी गतिविधि को कैसे बदलता है। सीखने की असफलता को आजकल यांत्रिक तौर पर 'निदान' के माध्यम से संबोधित किया जाता है जिसका सामान्य अर्थ है पाठों को बच्चों के लिए सिर्फ दोहरा देना। अनेक शिक्षक उन समस्याओं का 'इलाज' भी ढूँढ़ रहे हैं जो कुछ बच्चे संभवतः अनुभव करते हैं। शिक्षक अभी भी बच्चों की सामर्थ्य पर आधरित अधिगम को व्यक्तिमूलक बनाने में कठिनाई महसूस करते हैं।
- शिक्षकों को यह समझना चाहिए कि पाठ की योजना किस तरह बनाएँ कि बच्चे बताई गई चीज को सिर्फ दोहराएँ नहीं। बल्कि उनमें सोचने की रुचि जगे और सीखी हुई चीजों को करके देखने का

मौका मिले। एक नयी समस्या यह भी है कि गतिविधि और 'खेल-खेल में पढ़ाई' प्रणाली के नाम पर बच्चों को उनकी क्षमता से निचले स्तर का काम देकर काम को हलका कर दिया जाता है। यह भी एक सरोकार है कि 'गतिविधियों' पर ध्यान केंद्रित करने से काफी समय लगता है अतः अध्यापकों को अपेक्षाकृत अधिक समय देना पड़ेगा। निश्चित रूप से 'गतिविधि' की माँग होगी कि उनके नियोजन और तैयारी में समय लगाया जाए। आरंभ में शिक्षक को अभ्यास/गतिविधि की संस्कृति को स्थापित करने के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ेगा, उन नियमों को भी तय करना होगा, जो स्थान व सामग्री के प्रयोग को संचालित करेंगे।

- बहुस्तरीय, बहुक्षमता या अनुलंबिता पर आधारित कक्षा में व्यक्तिमूलक कार्य के लिए उपयुक्त सामग्री और संसाधनों की मदद से छोटे-बड़े समूहों के लिए किए गये नियोजन से पढ़ाई बहुत ही प्रभावशाली ढंग से संचालित होती है। पाठ-योजना को एक स्तरीय पाठ्यपुस्तकों पर आधारित करने के बजाए शिक्षकों को विषयक मुद्दों की योजना बनाने की ज़रूरत होगी जिससे शिक्षार्थी अपने स्तर के अभ्यासों में व्यस्त रहें।
- कक्षा में अध्यापकों के व्यवहार, उनके द्वारा प्रयुक्त सामग्री और उनके मूल्यांकन की तकनीक में परस्पर आंतरिक सामंजस्य होना चाहिए।

2.4.5 विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र

कक्षा में शिक्षक व शिक्षार्थी की अंतःक्रिया विवेचनात्मक होती है क्योंकि उसमें यह परिभाषित करने की ताकत होती है कि किसका ज्ञान स्कूल-संबंधी ज्ञान का हिस्सा बनेगा और किसकी आवाज उसे आकार देगी। शिक्षार्थी केवल ऐसे छोटे बच्चे नहीं होते जिनके लिए वयस्कों को कुछ हल ढूंढ़ने होते हैं। वे अपनी परिस्थिति व ज़रूरतों के सूक्ष्म पर्यवेक्षक होते हैं तथा उन्हें अपनी शिक्षा व भावी अवसरों से संबंधित समस्याओं के हल की प्रक्रिया तथा विमर्श में भाग लेना चाहिए। अतः बच्चों में चेतना होनी चाहिए कि उनके अनुभव व उनकी अनुभूतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। उन्हें अपनी मानसिक योग्यता को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि वे स्वतंत्र रूप से तर्क व विचार कर सकें और असहमत होने का साहस रखें। बच्चे जो स्कूल से बाहर सीखते हैं — उनकी क्षमताएँ, सीखने का सामर्थ्य और ज्ञान जिसे वे स्कूल लेकर आते हैं वह भी अधिगम की संवृद्धि में बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह उन बच्चों के लिए और भी महत्त्वपूर्ण है जो वंचित पृष्ठभूमि से आते हैं, खासकर लड़कियों के लिए क्योंकि उनकी दुनिया और उनकी वास्तविकताएँ स्कूली ज्ञान में बहुत कम दिखलाई देती हैं।

सहभागितापूर्ण सीखने और अध्यापन को, भावनाओं एवं अनुभव को कक्षा में एक निश्चित और महत्त्वपूर्ण जगह मिलनी चाहिए। हालांकि सहभागिता एक सशक्त कार्यनीति है लेकिन अगर इसे महज एक कर्मकाण्ड बना दिया जाए या वह शिक्षकों द्वारा उनके अपने लक्ष्य प्राप्त करने का माध्यम बन जाए तो इसका शिक्षा शास्त्रीय महत्त्व समाप्त हो जाता है। अध्यापक व शिक्षार्थी दोनों के अनुभवों से ही सच्ची सहभागिता शुरू होती है।

जब बच्चे और शिक्षक बिना परखे जाने के भय के अपने व्यक्तिगत या सामूहिक अनुभव बाँटते हैं, उन पर चिंतन करते हैं, तो इससे उन्हें उन लोगों के बारे में भी जानने का अवसर मिलता है जो उनके सामाजिक यथार्थ का हिस्सा नहीं होते। इससे वे विभिन्नताओं से डरने के बजाए उन्हें समझ पाते हैं। यदि बच्चों के सामाजिक

अनुभव कक्षा में लाने हैं तो यह अपरिहार्य है कि विवादस्पद मुद्दों को संबोधित किया जाए। विवाद बच्चों के जीवन का ही हिस्सा है जिससे बचा नहीं जा सकता। वे लगातार ऐसी स्थितियों का सामना करते हैं जिनमें नैतिक मूल्यांकन और काम की माँग होती है चाहे वह अनुभव स्वयं, परिवार व समाज से संबंधित द्वंद्व का हो या फिर समकालीन दुनिया के हिंसक संघर्ष का। इसलिए 'द्वंद्व' को शिक्षाशास्त्रीय कार्यनीति बनाकर प्रयोग करने से हम बच्चों को इस योग्य बना सकते हैं कि वे द्वंद्व से निपट सकें और उनमें इसकी प्रकृति और जीवन में इसकी भूमिका के प्रति जागरूकता पैदा हो।

विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र मुद्दों पर उनके राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक पहलुओं के संदर्भ में आलोचनात्मक चिंतन का अवसर प्रदान करता है। इसके लिए आवश्यक है सामाजिक मुद्दों पर विविध विचारों की स्वीकृति और संवाद के लोकतांत्रिक रूप के प्रति प्रतिबद्धता। यह उन अनेक संदर्भों के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, जिनमें हमारे स्कूल चलते हैं। एक आलोचनात्मक रूपरेखा बच्चों को सामाजिक मुद्दों को अलग परिप्रेक्ष्य में देखने में सहायता करती है और यह भी स्पष्ट करती है कि किस तरह ये मुद्दे उनके जीवन से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, लोकतंत्र को जीवन शैली के रूप में समझने के लिए एक तरीका अपनाया जा सकता है जिसमें बच्चे यह सोचें कि वे दूसरों को किस तरह देखते हैं (मसलन दोस्त, पड़ोसी, विपरीत सैक्स, बड़े इत्यादि)। वे कैसे चयन करते हैं (मसलन-गतिविधियाँ, खेल, मित्र, कैरियर इत्यादि) और कैसे वे निर्णय लेने के सामर्थ्य को परिपोषित करते हैं। इसी प्रकार मानवीय अधिकारों, जाति, धर्म और लिंग से जुड़े मुद्दों पर भी बात हो सकती है ताकि वे देख सकें कि किस तरह ये मुद्दे उनके दैनिक अनुभवों से जुड़े हैं और विभिन्न प्रकार की असमानताएँ किस प्रकार मिल कर बढ़ती जाती हैं। विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र खुले विमर्श और विविध दृष्टिकोणों को प्रोत्साहित करने के माध्यम से सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया को सरल बनाता है।

रूढ़िबद्ध धारणाएँ क्यों रहनी चाहिए?

समाज के हाशिए में रहने वाले वर्गों से आए बच्चों के बारे मे बनी हुई रूढ़िबद्ध धारणाओं की निरंतरता गंभीर चिंता का विषय है। इन समूहों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति भी शामिल है, जिन्हें पहले कभी स्कूल व साक्षरता तक पहुँच नहीं मिली। कुछ विद्यार्थियों को 'ऐतिहासिक' रूप से अशिक्षणीय, कम शिक्षा योग्य, सीखने में मंद, और यहाँ तक कि पढ़ाई से भयभीत लोगों के रूप में भी देखा गया है। इसी तरह लड़कियों को लेकर भी यह धारणा रही है कि खेलने में, गणित या विज्ञान में उनकी रुचि नहीं होती। शारीरिक असमर्थता वाले बच्चों के लिए अलग प्रकार की रूढ़िगत धारणाएँ हैं, जिनसे यह विचार प्रोत्साहित होता है कि उन्हें अन्य बच्चों के साथ नहीं पढ़ाया जा सकता। यह समझ इस विचार से निकलती है कि हीनता एवं असमानता लिंग, जाति, शारीरिक व मानसिक असमर्थताओं में ही निहित है। सफलता की कुछ कहानियाँ तो हैं लेकिन अधिकतर संख्या उन लोगों की है जो असफल हो जाते हैं और अधूरेपन के इस बोध को आत्मसात कर लेते हैं। संविधान के समानता के मूल्य को हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम अपने शिक्षकों को तैयार करें कि वे सभी बच्चों से समानता का व्यवहार करें। हमें अपने शिक्षकों को प्रशिक्षित करना होगा कि वे बच्चों में सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विविधता की समझ को विकसित करें जो खुद उनके साथ स्कूल तक आती है।

हमारे अनेक स्कूलों में पहली पीढ़ी के विद्यार्थियों की बड़ी संख्या है। शिक्षा व्यवस्था का पुनराभिमुखीकरण होना चाहिए, जब बच्चे का घर उसकी औपचारिक शिक्षा को सहारा देने की स्थिति में न हो। उदाहरण के लिए, पहली पीढ़ी के विद्यार्थी, लेखन व पठन को विकसित करने, पढ़ने में अभिरुचि बनाने, भाषा से परिचय प्राप्त करने व स्कूल की संस्कृति से परिचित होने के लिए पूर्णतः स्कूल पर निर्भर होंगे। यह निर्भरता तब और बढ़ जाती है जब मातृभाषा स्कूल में प्रयुक्त भाषा से अलग हो। ऐसी स्थितियों में 'होम-वर्क' लगभग नहीं होना चाहिए। बहुत-से ऐसे बच्चे घर की परिस्थिति के कारण काफ़ी असुरक्षित होते हैं जिससे हो सकता है कि वे समय पर न आएँ, अनियमित रूप से आएँ, कक्षा में अधिक ध्यान न दे पाएँ। ऐसे बच्चों को इन विवशताओं से मुक्त करने के लिए अंतःवर्गीय सहायता जुटाना और ऐसी पाठ्यचर्या बनाना आवश्यक है जो इन परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील हो।

शिक्षार्थियों को उन तत्वों के बारे में टिप्पणी करने, सोचने व उनकी तुलना करने के लिए प्रोत्साहित करने से जो उनके अपने वातावरण में मौजूद हैं, हम उन्हें प्राप्त ज्ञान की समीक्षा करना सिखा सकते हैं। यह तत्व चाहे पूर्वाग्रह युक्त पाठ्यपुस्तक में हो या उनके वातावरण के अन्य साहित्यिक स्रोत में। महिला एवं दलित सक्रिय कार्यकर्ताओं ने गीतों के एक सशक्त माध्यम को संवाद, टिप्पणी तथा विश्लेषण हेतु उपयोग किया है। विभिन्न माध्यमों में ज्ञान के भण्डार मौजूद हैं, ये सभी माध्यम चाहे वह टीवी हो, विज्ञापन, गीत, चित्रकला इत्यादि, सभी को शामिल करना विद्यार्थियों के बीच गतिशील अंतःक्रिया स्थापित करने के लिए आवश्यक है।

ऐसा शिक्षाशास्त्र जो लिंग, वर्ग, जाति व भूमण्डलीय असमानताओं के प्रति संवेदनशील हो, केवल विभिन्न व्यक्तिगत या सामूहिक अनुभवों की पुष्टि ही नहीं करता बल्कि सत्ता की वृहद् संरचना में उन्हें निर्धारित भी करता है। ऐसे प्रश्न उठाता है कि कौन किसके लिए बोल सकता है? किसकी जानकारी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है? इसके लिए विभिन्न शिक्षार्थियों हेतु विभिन्न नीतियाँ विकसित करने की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए, कुछ बच्चों को कक्षा में बोलने के लिए प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण हो सकता है जबकि कुछ के लिए यह सीखना कि दूसरों की बात सुननी चाहिए।

अध्यापक की भूमिका है बच्चों को अभिव्यक्ति के लिए एक सुरक्षित स्थान व अवसर देना और साथ ही निश्चित प्रकार की अंतःक्रिया स्थापित करना। उन्हें 'नैतिक सत्ता' की परंपरागत भूमिका से बाहर निकलना होगा और यह सीखना पड़ेगा कि बिना निर्णयात्मक हुए समानुभूति के साथ कैसे सुनते हैं। बच्चों को एक दूसरे को सुनने में सक्षम बनाना होगा। शिक्षार्थियों की समझ को समेकित कर, रचनात्मक रूप से उस समझ की सीमाएँ बढ़ाते हुए इस बात के प्रति सचेत भी करना होगा कि मतभेद या अंतर किस प्रकार व्यक्त किए जा सकते हैं। परस्पर विश्वास का वातावरण कक्षा को बच्चों के लिए एक ऐसा सुरक्षित स्थान बना देगा जहाँ वे अनुभव बाँट सकें, जहाँ विवादों को स्वीकार कर उन पर रचनात्मक प्रश्न उठाए जा सकें, और जहाँ विवादों के हल, परस्पर सहमति से निकाले जा सकें चाहे ये हल कितने ही अस्थायी क्यों न हों। विशेषकर लड़कियों व वंचित सामाजिक वर्ग से आए बच्चों के लिए कक्षा व स्कूल ऐसे स्थान पर होने चाहिए जहाँ वे निर्णय लेने की प्रक्रिया पर चर्चा कर सकें, अपने निर्णय के आधार पर प्रश्न उठा सकें तथा सोच-समझ कर विकल्प चुन सकें।

2.5 ज्ञान एवं समझ

यह प्रश्न कि बच्चों को क्या पढ़ाया जाए एक अधिक गहरे सवाल से निकलता है कि शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिए। इसका उत्तर है वे क्षमताएं और मूल्य जो हर व्यक्ति में होने चाहिए और समाज के लिए एक सामाजिक-राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दर्शन। यह कोई एक लक्ष्य नहीं है बल्कि लक्ष्यों का एक समुच्चय है। इसलिए चयनित विषयवस्तु को लक्ष्य-समुच्चय के साथ न्याय करना चाहिए और व्यापक एवं संतुलित होना चाहिए। पाठ्यचर्या ऐसी हो जो शिक्षार्थियों को ऐसे अनुभव उपलब्ध करवाए जो उसमें क्रमशः विवेक की क्षमता बढ़ाते हुए उसके ज्ञान के आधार को पुष्ट करे; विभिन्न विषयों के माध्यम से दुनिया को समझने का मौका दे; उनमें सौंदर्यबोध को पुष्ट करे और दूसरों के प्रति संवेदनशील बनाए; उन्हें काम करने और आर्थिक प्रक्रियाओं में भागीदारी करने दे। इस खण्ड में यह चर्चा की जा रही है कि ज्ञान एवं समझ पाठ्यचर्या चुनावों और विषय वस्तु के प्रस्तावों के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि कैसे बनाते हैं।

ज्ञान की कल्पना संगठित अनुभव के रूप में की जा सकती है, जो भाषा, विचार-शृंखला (या

बोलते चित्र

कक्षा में बच्चों को किसी घर का एक चित्र दिखाना जिसमें परिवार के विभिन्न सदस्य विभिन्न कार्यों का संपादन कर रहे हैं। अंतर यह है कि पिता खाना पका रहा है और माँ बिजली का बल्ब ठीक कर रही है, लड़की स्कूल से साइकिल पर घर लौट रही है और लड़का गाय दुह रहा है; दूसरी बहन आम के पेड़ पर चढ़ रही है और दूसरा लड़का घर में झाड़ू लगा रहा है। दादाजी बटन टाँक रहे हैं और दादी माँ हिसाब-किताब देख रही हैं। बच्चे से उस चित्र के बारे में बोलने को कहा जाए। कितने प्रकार के 'कार्य' वे समझ पाते हैं?

क्या उन्हें ऐसा लगता है कि इनमें से कोई काम किसी को नहीं करना चाहिए। क्यों?

उनसे काम की गरिमा, समानता और जेंडर पर बहस करवाएँ।

इसके महत्त्व की चर्चा करें कि हर व्यक्ति को स्वावलंबी और संपूर्ण होना चाहिए।

ठीक ऐसी चर्चा अन्य मुद्दों को लेकर भी की जा सकती है। जैसे अच्छा और बुरा काम, जातिगत पहचान और कार्य की मूल्य-आधारित प्रकृति के बारे में भी बोलते चित्रों के माध्यम से बताया जा सकता है।

संकल्पना की संरचना) के माध्यम से अर्थबोध पैदा करती है, जिसके माध्यम से हमें अपने संसार को समझने में सफलता मिलती है। इसकी कल्पना गतिविधियों की शृंखला, शारीरिक कुशलता के साथ विचार, संसारी कार्यों में सहभागिता और चीजों की रचना करने के रूप में भी की जा सकती है। समय के साथ, इंसान ने अपने लिए स्वयं ही ज्ञान की नयी विधाएँ विकसित की हैं, जिसमें सोचने के ढंग, अनुभव तथा कार्य-निष्पादन और अतिरिक्त ज्ञान निर्माण के आयाम शामिल हैं। सारे बच्चों को इस संपत्ति के काफ़ी बड़े भाग का पुनःसृजन करना पड़ता है, जो कि आगे की सोच और विश्व में सही प्रकार से कार्य करने के लिए आवश्यक होता है। ज्ञान सृजन की प्रक्रियाओं में भाग लेना, अर्थ ढूँढ़ना और मानवीय कर्म में भागीदारी भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान की यह व्यापक कल्पना हमें उस दिशा में ले जाती है, जो ज्ञान का परीक्षण केवल 'परिणाम' के अर्थों में न करके सृजन की प्रक्रिया के नियमों के रूप में, व्यवस्थापन, उपलब्धता एवं उपयोग के अर्थों में भी करता है। यह कल्पना सुझाती है कि पाठ्यचर्या में जितना ध्यान सीखने की विषय-वस्तु पर दिया जाए उतना ही इस पर भी दिया जाए कि शिक्षार्थी पुनःसृजित ज्ञान से कैसे जुड़ते हैं और सीखने की प्रक्रिया क्या है।

दूसरी ओर, ज्ञान को अगर तैयार माल की श्रेणी में रखा जाए, तो उसको ऐसी सूचना के तौर पर व्यवस्थित करना होगा जिसका बच्चों के दिमाग में स्थानांतरण हो सके। शिक्षा तब मानवीय ज्ञान के इस खजाने को बनाए रखने और उसे प्रसारित करने में ही लगी रहेगी। ज्ञान के इस दृष्टिकोण के मुताबिक सीखने वाले की परिकल्पना निष्क्रिय भाव से ग्रहण करने वाले के रूप में प्रकट की गई है, जबकि पिछले दृष्टिकोण में अवलोकन द्वारा विश्व के साथ सक्रिय जुड़ाव, संवेदना, मनन, कर्म और बाँटना शामिल हैं।

पाठ्यचर्या उन क्षमताओं के विकास की योजना होती है, जिनके माध्यम से चयनित शैक्षणिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। मानवीय क्षमताओं के आयाम काफ़ी विस्तृत होते हैं, और शिक्षा के माध्यम से हम उन सबका विकास नहीं कर सकते। इसलिए चिंता उन सामर्थ्यों को लेकर होती है जो हमारे चयनित लक्ष्यों के संदर्भ में आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हों, जो आगे विकास की संभावना से युक्त हों और जिसका हमें कुछ शिक्षणशास्त्रीय ज्ञान हो।

2.5.1 बुनियादी क्षमताएँ

बच्चों की बुनियादी क्षमताएँ वे होती हैं जो बोध के विकास, मूल्यों और कौशल-संबंधी वृहत आधार तैयार करती हैं।

क) **भाषा** एवं अभिव्यक्ति के अन्य माध्यम अर्थ निर्माण और दूसरों के साथ बाँटने के आधार तैयार करते हैं। वे बोध और ज्ञान के विकास की संभावना तैयार करते हैं। साथ ही, वे सांकेतिकता, वर्गीकरण, स्मरण और दर्ज करने संबंधी आधार भी बनाते हैं। बच्चे के लिए भाषा का विकास, अस्मिता, बोध के विकास, और दूसरों के साथ जुड़ने की क्षमता के विकास का समानार्थी होना है। न केवल लिपि वाली मौखिक भाषा, बल्कि लिपिहीन भाषा, सांकेतिक भाषाएँ, ब्रेल जैसी लिपि और प्रदर्शन कलाएँ भी अर्थ और अभिव्यक्ति का आधार तैयार करती हैं।

ख) **संबंध बनाना और कायम रखना** समाज, प्रकृति एवं स्वयं के साथ भावनात्मक प्रगाढ़ता, संवेदनशीलता और मूल्यों के साथ सतत संबंध बनाना, जीवन में सार्थकता लाता है। उसको भावनात्मक वस्तु एवं उद्देश्य देता है। यह नैतिकता का भी आधार है।

ग) **कार्य और क्रिया संबंधी क्षमता** — इसमें शारीरिक समन्वय व विचार और संकल्प से तालमेल, कौशल और समझ के आधार पर किसी लक्ष्य को पाने या कुछ सृजित करने के दिशानिर्देश शामिल हैं। साथ ही, इसमें उपकरणों और तकनीकों की देखभाल, वस्तुओं और अनुभवों का उपयोग व उन्हें व्यवस्थित करना तथा संप्रेषण भी शामिल होता है।

2.5.2 व्यवहार में ज्ञान

मानव गतिविधियों और व्यवहार का विस्तृत क्षेत्र सामाजिक जीवन एवं संस्कृति को जीवित रखता हैं। कताई, काष्ठकला, मिट्टी के बर्तन बनाने जैसी शिल्पकलाएँ, किसान और दुकानदारी जैसे पेशों के साथ-साथ विविध प्रकार की प्रदर्शन और दृश्यकलाओं तथा खेलकूद सभी ज्ञान के मूल्यवान रूप हैं। ये ज्ञान व्यावहारिक प्रकृति के होते हैं, जिनकी पूरी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती।

इनमें से कई में ऐसी क्षमताओं की ज़रूरत होती है जो विकसित हों। इनमें शामिल हैं उपयोगी और सुन्दर उत्पाद की अभिकल्पना, वस्तु से उत्पाद बना सकने का कौशल, अपनी क्षमताओं का ज्ञान, समूह में काम करने की क्षमता, स्थायित्व और अनुशासन। चाहे कोई वस्तु तैयार की जा रही हो या दर्शकों के सामने नाटक के रूप में प्रस्तुति करना हो इन दोनों मामलों में ही यह सत्य है।

इन गतिविधियों को कौशल कहने से केवल इसमें शामिल कौशलों पर ही ध्यान जाता है, लेकिन सामाजिक एवं प्राकृतिक संसार और स्वयं की समझ पर ध्यान नहीं जाता जो इनमें से प्रत्येक कार्यों में शामिल होती हैं। मान्य अकादमिक विषयों की तरह इन शिल्पों और व्यापारों की भी अपनी परंपराएँ और उनके दक्ष कारीगार रहे हैं। इन सभी हस्तकौशलों, पेशों और कलाओं से संबद्ध

> काष्ठकला जैसे शिल्प के लिए अभिकल्पना और बनाए जाने वाली वस्तु की निर्मिति की समझ, समाज में उसकी उपयोगिता की समझ (सामाजिक-सांस्कृतिक, सौंदर्यपरक और आर्थिक महत्व), उपलब्ध सामग्री के ज्ञान और गुणवत्ता और लागत की दृष्टि से उपयुक्तता के ज्ञान के साथ-साथ यह ज्ञान भी आवश्यक होता है कि उसके लिए कच्ची सामग्री कहाँ मिलेगी। शुरू से अंत तक कुशलतापूर्वक सामान तैयार कर लेने की क्षमता, अपने कौशल के साथ-साथ उपयुक्त व्यक्ति के कौशल का इस्तेमाल करने में सक्षम होना, औज़ारों का ज्ञान, गुणवत्ता की परख और विशिष्ट कौशल की ज़रूरत होती है।
>
> कबड्डी जैसे खेल के लिए शारीरिक क्षमता और सहजता, खेल के नियमों की जानकारी, कौशल और शारीरिक निपुणता, अपने सामर्थ्य की समझ, टीम में योजना बनाकर समन्वयन की क्षमता, दूसरी टीम को तौल पाने की समझ और जीत की व्यूहरचना आवश्यक होती है।

मौखिक और शिल्प परंपराएँ

मौखिक श्रुति परंपरा और शिल्प परंपराएँ विशिष्ट बौद्धिक संपदा का दर्जा रखती हैं। विविध और परिष्कृत परंपराओं का पोषण हमारे समाज के असंख्य लोगों ने किया है जिनमें महिलाएँ, हाशिए पर जीने वाले लोगों के छोटे-छोटे समूह और आदिवासी जन शामिल हैं। बच्चों की पाठ्यचर्या में इसे शामिल करने से हम उनके सामने समझ और विचारों के साररूप की एक खिड़की खोल सकें। ऐसे कौशल ऐसी क्षमता दे सकते हैं जिससे वे अपने जीवन और समाज की समृद्धि में योगदान कर सकते हैं। स्कूल साक्षर को सुविधा प्रदान करता है परंतु मौखिक की उपेक्षा नहीं कर सकता। सभी तरह के स्थानीय मौखिक कौशलों को पोषित करना महत्त्वपूर्ण है।

ज्ञान क्रमशः पीढ़ी-दर-पीढ़ी एकत्रित होता रहा है और अगली पीढ़ी तक अनुभव और चिंतन के द्वारा पहुँचता रहा है। इसलिए इनमें से प्रत्येक व्यावहारिक ज्ञान का एक विषय है। इस प्रकार के व्यावहारिक ज्ञान रूपों की भारतीय विरासत काफ़ी विशाल, विविध और समृद्ध है। उत्पादक कौशल के रूप में वे हमारी अर्थव्यवस्था के मूल्यवान अंग हैं।

इन व्यवहारपरक अनुशासनों की ज्ञानमीमांसात्मक संरचनाओं को समझने के लिए काफ़ी अध्ययन और शोध की ज़रूरत है। यह समझना कि वे किस प्रकार कौशल सीखते-अपनाते हैं और अपने ज्ञान को किस प्रकार से व्यवस्थित करते हैं, यह समाजशास्त्रीय प्रश्न है क्योंकि परंपरागत व्यवसायों का संबंध जाति, समूह और लिंग से होता है। पाठ्यचर्या में उनके महत्त्व को समझना आवश्यक है, केवल कार्य के रूप में नहीं, बल्कि समान रूप से विविध प्रकार के ज्ञान के रूप में तथा अन्य प्रकार के सीखने के माध्यम के रूप में भी। मानव ज्ञान के इस महत्त्वपूर्ण हिस्से को स्कूली पाठ्यचर्या में भरपूर स्थान देने की आवश्यकता है।

2.5.3 समझ के रूप

ज्ञान के पुष्टिकरण व औचित्य को स्थापित करने की प्रक्रिया में जिन अवधारणाओं व अर्थों का उपयोग किया जाता है, उनके आधार पर भी ज्ञान का वर्गीकरण किया जा सकता है। प्रत्येक का अपना 'आलोचनात्मक चिंतन', ज्ञान को जाँचने व उसकी पुष्टि करने का तरीका और अपने प्रकार की रचनात्मकता होती है।

गणित की अपनी विशिष्ट अवधारणाएँ होती हैं; जैसे- मूलांक, वर्गमूल, भिन्न, पूर्णांक आदि-आदि। उसकी भी वैधता-निर्धारण की अपनी प्रक्रिया होती है, जैसे कि जो सिद्धांत स्थापित किया जाना है उसका कदम-दर-कदम प्रदर्शन। गणित में पुष्टिकरण की प्रक्रिया कभी आनुभविक नहीं होती है और न ही अवलोकन या प्रयोग पर आधारित होती है। वह तो उस संरचना के अंदर मौजूद उपयुक्त परिभाषाओं एवं स्वयंसिद्ध सिद्धांतों के आधार पर एक प्रदर्शन होता है।

गणित की ही तरह *विज्ञानों* की भी अपनी अवधारणाएँ होती हैं। बहुधा वे सिद्धांतों के माध्यम से एक दूसरे से संबद्ध होते हैं और प्राकृतिक विश्व की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। अवधारणाओं में अणु, चुंबकीय क्षेत्र, कोशिका और न्यूरॉन आते हैं। वैज्ञानिक परख में सैद्धांतिक आधारों पर की गई घोषणाओं को परीक्षण के आधार पर वैध ठहराया जाता है जिनमें अकसर उपकरणों और नियंत्रण की सहायता ली जाती है। सिद्धांत-निर्माण और मानक तय करते हुए कभी-कभार गणितीय परिशुद्धता की आवश्यकता पड़ती है लेकिन केवल निरीक्षण-परीक्षण के स्तर पर ही। यहाँ प्रयास यह किया जाता है कि ऐसा आख्यान तैयार हो जो किसी तरह से यथार्थ के सदृश्य हो।

सामाजिक विज्ञानों तथा *मानविकी* की अपनी अवधारणाएँ होती हैं, उदाहरण के लिए, समुदाय, आधुनिकता, संस्कृति, अस्मिता और राजनीति।

सामाजिक विज्ञानों का लक्ष्य मनुष्यों और समाज में मौजूद मानव समूहों की एक सामान्य और समीक्षात्मक समझ विकसित करना है। सामाजिक विज्ञानों का सरोकार सामाजिक संसार के विवरण, उसकी व्याख्या और उसके बारे में पूर्वानुमान लगाने से है। सामाजिक विज्ञानों की प्राक्कल्पना सामूहिक जीवन में मानव व्यवहार के बारे में होती है और उनकी वैधता अंततः समाज में किए गए अवलोकन पर भी निर्भर करती है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान लगभग एकसमान होते हैं लेकिन उनमें दो भेद भी हैं, जो पाठ्यचर्या की योजना बनाने के लिए बहुत ही प्रासंगिक हैं। प्रथम, सामाजिक विज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करते हैं जिसका आधार तर्क होता है, जबकि विज्ञान 'कारण-प्रभाव' के आधार पर काम करता है। दूसरे, सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्ष बहुधा नैतिकता और वांछनीयता के सवाल उठाते हैं जबकि प्राकृतिक घटनाएँ समझी जाती हैं, उन पर नैतिकता के सवाल तभी उठाए जाते हैं जब वे मानव के कार्य-व्यवहार में शामिल हो जाती हैं।

कला और सौंदर्यशास्त्र में जानी-पहचानी शब्दावली का प्रयोग होता है, जैसे लय, सामंजस्य, अभिव्यक्ति और संतुलन। हालाँकि वह इनको नए संदर्भ या नए अर्थ देती है। कला-उत्पाद का परीक्षण यथार्थ या सत्य के लिए नहीं किया जा सकता। यद्यपि कला में आत्मपरक व्याख्या की काफी संभावना होती है, तो भी यह संभव है कि ऐसी कलात्मक संभावनाओं की शिक्षा दी जा सके जिससे अच्छे-बुरे की समझ आ सके।

बोध के स्तर

बोध- भाषा की समझ और जो कहा गया है उसके भाषिक अभिप्रायों की समझ।

संदर्भ - जिसके बारे में चर्चा हो उसकी समझ, उसकी अवधारणाओं की समझ।

ज्ञानात्मक - इसकी समझ कि साक्ष्य क्या होता है, किसी कथन की सत्यता कैसे तय होती है, किस प्रकार साक्ष्य प्राप्त किया जाए और सत्य को परखा जाए।

संबंधित और सार्थक - विभिन्न तथ्यों और प्रत्ययों के अंतर्संबंधों को विकसित कर उनके माध्यम से समझना और उनको 'ज्ञात वस्तुओं' के जाल से जोड़ना। विभिन्न वस्तुओं के बीच के संबंधों को समझना और उनका एक-दूसरे के संदर्भ में महत्त्व जानना।

नीतिशास्त्र का संबंध समस्त मानवीय मूल्यों, नियमों, सिद्धांतों, मानकों और आदर्शों के साथ होता है जो उसको अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। अतः कर्म व चयन के संबंध में नीतिशास्त्र को समझ के अन्य स्वरूपों से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। नैतिक समझ में किसी निर्णय के कारणों की समझ शामिल होती है। कुछ कृत्य क्यों सही हैं और दूसरे क्यों गलत हैं फिर चाहे ये निर्णय कितने ही सत्तावान व्यक्ति ने क्यों न लिए हों। इसके अलावा, ये तर्क प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान रहते हैंः तर्क, समानता और वैयक्तिक स्वायत्तता की अवधारणाएँ आपस में गहनता से जुड़ी हुई हैं।

दर्शनशास्त्र में एक ओर तो जीवन के संबंध में उपरोक्त वर्णित विधाओं का विश्लेषणात्मक स्पष्टीकरण, मूल्यांकन और संयोगात्मक समन्वय के साथ जुड़ाव होता है, तो दूसरी ओर वह समग्रता, परम अर्थ और अनुभवातीत से भी जुड़ा होता है।

बुनियादी सामर्थ्य, व्यवहार का ज्ञान और समझ के रूप ही वे प्रधान तरीके रहे हैं जिनके माध्यम से इतिहास के दौर में मानवीय अनुभवों का विस्तार किया गया है। सहज मानवीय गतिविधि को छोड़कर मानव समाज की बाकी सारी गतिविधियाँ प्रधान तरीकों का प्रयोग करती हैं। इन सारी गतिविधियों में उदार पेशे, तकनीक, उपयोग एवं वाणिज्य शामिल हैं। ये मानव संस्कृति का केंद्र बिंदु हैं। कल्पना और आलोचनात्मक चिंतन का सीधा संबंध बोध और तर्कशक्ति के विकास से होता है, और इसी तरह ही भावनाओं का भी होता है।

ज्ञान के हर क्षेत्र की अपनी विशिष्ट शब्दावली प्रत्यय, सिद्धांत, वर्णन और पद्धतियाँ होती हैं। ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र संसार को देखने का एक अलग दृष्टिकोण देता है जिससे संसार से जुड़ने और उसमें कर्म करने का नज़रिया भी मिलता है। ज्ञान के ये क्षेत्र अतीत में दिए गए लोगों के योगदान से विकसित हुए हैं और आज भी बढ़ रहे हैं। ये क्षेत्र अपनी संरचना और मुद्दों की प्राथमिकता में बदले भी हैं। इनको सीखने में कई तरह की बौद्धिक क्षमताएँ और ज्ञान अर्जन के तरीके इस्तेमाल होते हैं। वे तरीके हैं : सुस्पष्ट तर्क एवं अभिव्यक्ति के औपचारिक तरीके, प्रमाण की खोज एवं उसका मूल्यांकन, अनुभव पर आधारित उपलक्षित ज्ञान, समन्वय, अवलोकन एवं व्यावहारिक संबद्धता, ताकि स्वयं से एवं दूसरों के साथ सामंजस्य बिठाते हुए कार्यों का संपादन हो सके तथा समस्याओं एवं मुद्दों को संबोधित किया जा सके और काम करने की दिशा तय हो पाए। ज्ञान के सभी रूपों एवं ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया में सृजनात्मकता एवं उत्कृष्टता अभिन्न रूप से शामिल है।

मानव सभ्यता एवं ज्ञान का संचयन, ज्ञान अर्जन एवं चीजों को करने के तरीके मानव समाज की वंशानुगत धरोहर में मूल्यवान हिस्से हैं। हमारे सारे बच्चों को इस ज्ञान तक पहुँचने का अधिकार है, ताकि वे जिससे अपनी सामान्य बुद्धि को शिक्षित एवं समृद्ध बना पाएँ। जिससे उनका खुद का विकास हो, वे स्वयं को खोज पाएँ और इन औज़ारों एवं दृष्टिकोण के ज़रिये संसार, प्रकृति एवं लोगों के विषय में भी जान पाएँ।

2.6 ज्ञान को फिर से रचना

हम स्कूली पाठ्यचर्या के माध्यम से समझ की क्षमताएँ, व्यवहार और कौशल विकसित करना चाहते हैं। इनमें से कुछ गणित, इतिहास, प्रकृति विज्ञान या दृश्यकलाओं में सहज ही विषयों के रूप में सूत्रित हो जाते हैं। कुछ अन्य, जैसे नैतिक समझ को विषयों और गतिविधियों के साथ जोड़ने की ज़रूरत होती है। भाषा के मूल सामर्थ्य को उपरोक्त दोनों तरीकों की आवश्यकता होती है, जबकि सौंदर्यात्मक समझ सहज ही दोनों प्रस्तावों के लिए उपलब्ध हो जाती है। ज्ञान के इन सभी क्षेत्रों के लिए परियोजना कार्य, अंतरअनुशासनात्मक पाठ निरीक्षण, पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं की आवश्यकता होती है।

ज्ञान के इस दृष्टिकोण के मुताबिक हमें खत्म हो जाने वाले तथ्यों से हटकर उस प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है जिनके माध्यम से वे उभर कर आते हैं। तथ्यों की सतह से नीचे जाकर भी उनके बीच गहरे संबंधों को समझने की ज़रूरत होती है जो उन्हें अर्थ और महत्त्व प्रदान करते हैं।

भारत में हमने परंपरागत रूप से पाठ्यचर्या निर्धारण में विषय आधारित दृष्टिकोण अपनाया है, जो केवल विषयों पर आधारित होता है। यह तरीका ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों में एक 'पुलिंदे' की तरह प्रस्तुत करता है, जिसके साथ विषय क्षेत्रों से जुड़ी योग्यता के परीक्षण के लिए दी जाने वाली परीक्षाओं की विधि भी दी जाती है। इसके साथ ही उस विषय क्षेत्र में दक्षता को जाँचने हेतु अंक भी दिए जाते हैं। इस कारण हमारी शिक्षा व्यवस्था में कई समस्याएँ आ गई हैं। प्रथम, ज्ञान के जो स्वरूप पाठ्यपुस्तकों के अंतर्गत नहीं आते या जिनका मूल्यांकन अंकों के आधार पर नहीं हो सकता उनको एक तरफ़ करके 'अतिरिक्त', या पाठ्यविषयेतर करार दे दिया जाता है जबकि उन्हें पाठ्यचर्या का समेकित अंग होना चाहिए। इनको जैसे-तैसे निपटा दिया जाता है और बिरले ही शिक्षक इन विषयों के लिए स्कूल में तैयारी करते या ध्यान देते हैं। ज्ञान के अन्य रूप जैसे शिल्प और खेलकूद, जो कौशल, सौंदर्यबोध, चतुराई, रचनात्मकता, समूह में काम करने की क्षमता आदि की दृष्टि से बेहद समृद्ध होते हैं, परे छूट जाते हैं। कामकाज-संबंधी ज्ञान के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र, उससे

जुड़े व्यावहारिक कौशल भी पूरी तरह उपेक्षित रह जाते हैं और अभी भी ऐसे उपयुक्त पाठ्यचर्या सिद्धांत नहीं हैं जो इन क्षेत्रों में ज्ञान, कौशल और रुचि के विकास को प्रोत्साहित कर पाएँ।

दूसरे, विषयों का आपस में कोई तालमेल नहीं होता वे बिलकुल अपरिवर्तनीय उपखंड बन जाते हैं इसीलिए ज्ञान भी समेकित और जुड़ा हुआ लगने की बजाए खंडित लगता है। बच्चे की दुनिया को देखने के दृष्टिकोण की बजाए ये विषय ही ज्ञान के आरंभ बिंदु बन जाते हैं और स्कूली ज्ञान और बाहरी ज्ञान के बीच एक सीमारेखा खिंच जाती है।

तीसरा, पहले से मौजूद ज्ञान को ज्यादा तरजीह दी जाती है जिससे बच्चे की खुद ज्ञान सृजित करने और इस प्रक्रिया के नए तरीके खोजने की क्षमता नष्ट हो जाती है। सूचना, ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है, सूचना को प्राथमिकता मिल जाती है, जिससे भारी-भरकम पाठ्यपुस्तकों का निर्माण होता है, यांत्रिक रूप से दोहराने की पद्धति और प्रश्नों के उत्तर आने पर ज़ोर दिया जाता है न कि समझ बढ़ाने या समस्या सुलझाने पर। ज्ञान को सूचना समझने की इस प्रवृत्ति के कारण पाठ्यचर्या में याद करने के लिए कितने ही तथ्यों का 'बोझ' बढ़ा दिया जाता है।

चौथी, समस्या का संबंध नए विषयों को शामिल करने से है। यह एक महत्वपूर्ण ज़रूरत है कि विषय समाज के समकालीन मुद्दों को संबोधित करें लेकिन इससे एक अनुचित प्रवृत्ति यह बन गई है कि स्कूली पाठ्यचर्या में इन मुद्दों को संबोधित करने के लिए नए विषय 'बना' दिए जाते हैं। और साथ ही उनकी पाठ्यपुस्तकें और मूल्यांकन के तरीकें भी बना दिए जाते हैं। अगर पहले से मौजूद विषयों और चल रही गतिविधियों के द्वारा इनको पाठ्यचर्या में शामिल किया जाए तो इन मुद्दों को कहीं ज्यादा अच्छे तरीके से संबोधित किया जा सकता है। यह कहने की तो ज़रूरत ही नहीं कि नए मुद्दों को विषयों की तरह जोड़ने से पाठ्यचर्या का बोझ और भी बढ़ता है और ज्ञान के अवांछनीय विखंडन को बढ़ावा मिलता है।

अंततः, पांचवीं समस्या पाठ्यचर्या में शामिल करने के लिए ज्ञान के चयन के सिद्धांतों के बारे में है। ये सिद्धांत ठीक से बने ही नहीं हैं। विकासात्मक पहलुओं के दृष्टिकोण से उपयुक्तता पर, विभिन्न कक्षाओं में जुड़ाव, और तार्किक क्रमिकता एवं गति जिसमें पहले पढ़ी अवधारणाओं पर वापिस जाने के मौके न के बराबर हों। इन सभी पर किया गया सोच-विचार अपर्याप्त है। ऐसी अवधारणाएँ जो विषयों की सीमाओं को लाँघती हैं, उदाहरणार्थ – माध्यमिक स्कूल में गणित एवं भौतिकी की अवधारणाएँ, उन्हें एक दूसरे से नहीं जोड़ा जाता।

2.7 बच्चों का ज्ञान और स्थानीय ज्ञान

बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण अधिगम प्राप्ति के लिए प्राथमिक संदर्भ होता है जिसमें ज्ञान अपना महत्व अर्जित करता है। परिवेश के साथ अंतःक्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है। हालांकि पाठ्यपुस्तकों की संकल्पना और शिक्षा-शास्त्रीय व्यवहार में हमेशा से ही इस समझ की अवहेलना की गई है। इसीलिए इस दस्तावेज़ में हम शिक्षा को प्रासंगिक बनाने के महत्व पर ज़ोर दे रहे हैं; सीखने को बच्चे के परिवेश में स्थित करने पर और स्कूल एवं बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और स्कूल के बीच की सीमा रेखा को सरन्ध्र बनाने पर भी ज़ोर दे रहे हैं। यह केवल इसलिए नहीं कि अपने परिवेश में बच्चों का अपना अनुभव ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश का बेहतर माध्यम होता है बल्कि इसीलिए भी कि ज्ञान का मतलब ही दुनिया से जुड़ना है। यह केवल साधन नहीं है, बल्कि साधन और साध्य दोनों है। इसके लिए हमें ज्ञान को व्यावहारिक बनाने की ज़रूरत नहीं होती न तात्कालिक रूप से प्रासंगिक बनाने

ज्ञान का चुनाव

ज्ञान की सीमाओं का काफी विस्तार हुआ है, इसलिए यह आवश्यक है कि पाठ्यचर्या में क्या शामिल हो इसका चुनाव किया जाए। प्रासंगिकता- यह काफी व्यावहारिक चुनावों की ओर ले जा सकती है, जिसमें अक्सर यह गलतफहमी रहती है कि बाद के वयस्क जीवन में क्या उपयोगी है। यदि चुनाव व्यावहारिक न हो तो बच्चों के वर्तमान के ज्ञान निर्माण में बिलकुल सहायक नहीं होता, इसलिए किसी भी तरह वह ज्ञान उसके भविष्य निर्माण के काम नहीं आता।

अभिरुचि- एक उपयोगी तरीका है, लेकिन यह इस सरलीकरण पर आधारित नहीं होना चाहिए कि बच्चे को किस चीज में आनंद आता है, मसलन कार्टून और खेलकूद। कोशिश यह होनी चाहिए कि बच्चे की रुचि जाग्रत हो और वह उत्साह से काम करे।

सार्थकता- सबसे महत्वपूर्ण उपाय। अगर बच्चा उस गतिविधि या ज्ञान को उपयोगी समझता है तो पाठ्यचर्या में उसे शामिल करने को प्रासंगिक ठहराया जा सकता है।

की, बल्कि इसके द्वारा संसार से जुड़ते हुए इसकी गत्यात्मकता को पहचानने की।

शिक्षार्थी जब तक अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को पाठ्यपुस्तक में निरूपित संदर्भों के संबंध में स्थित नहीं कर पाते और इस ज्ञान को समाज के अपने अनुभवों से जोड़ नहीं पाते, तब तक ज्ञान मात्र सूचना के ही स्तर पर रहता है। अगर हम यह देखना चाहते हैं कि अधिगम सामुदायिक जीवन के भविष्य के दर्शन से कैसे जुड़ता है तो इस बात पर मनन को प्रोत्साहित करना निर्णायक होगा कि *किसी चीज का ज्ञान होने का क्या अर्थ है,* और जो हमने सीखा उसे उपयोग मे कैसे लाएँ। शिक्षार्थी को उसके सीखने में एक सक्रिय भागीदार की तरह पहचानने की ज़रूरत है।

दिन प्रतिदिन बच्चे स्कूल में अपने आसपास की दुनिया के अनुभव लेकर आते हैं - वे पेड़ जिन पर वे चढ़े, फल जो उन्होंने खाए, चिड़ियाँ जिन्हें उन्होंने पसंद किया। हर बच्चा बहुत ही सक्रिय होकर दिन और रात के प्राकृतिक चक्र को देखता है, मौसम, पानी, अपने आसपास के जानवरों और पौधों को भी देखता है। जब बच्चे पहली कक्षा में प्रवेश लेते हैं तो उनके पास पहले से ही समृद्ध भाषा होती है, छोटे अंकों का आधार होता है। फिर भी हम बिरले ही उनके ज्ञान को कक्षा में सुन पाते हैं। बिरले ही हम पाठ या पढ़ाने के दौरान उनसे स्कूल के बाहर की दुनिया के बारे में बात करते हैं। उल्टे हम छपे हुए शब्दों और तस्वीरों की सहूलियत का सहारा ले लेते हैं जो प्राकृतिक संसार की बहुत ही घटिया प्रतिकृति होती है। उससे भी ज्यादा बुरा तो यह है कि आजकल कंप्यूटर- आधारित सीखने के नाम पर, जैविक-संसार को अनुप्राणित रेखाओं में बदल दिया है और बच्चों से उम्मीद की जाती है कि वे उन्हें कंप्यूटर पटल पर देखें। जैविक-अजैविक का पाठ शुरू करने से पहले, अगर अध्यापिका बच्चों को पास के मैदान में सैर के लिए ले जाए और कक्षा में वापिस आकर बच्चे दस जैविक और दस अजैविक चीजों के नाम लिखें तो परिणाम विस्मयकारी होंगे। तमिलनाडु के महाबलिपुरम में रहने वाले बच्चे अपनी इकट्ठी की गई या देखी हुई चीजों की सूची में, सीप, मछली या पत्थर भी शामिल कर सकते हैं। छत्तीसगढ़ के दंडकारण्य जंगल के पास रहने वाले बच्चे घोंसले, मधुमक्खी के छत्ते और पायल अपनी सूची में शामिल करेंगे। जबकि, अक्सर बच्चों से यह माँग की जाती है कि पाठ्यपुस्तक में दिए गए चित्रों और शब्दों की सूची या चीजों को जैविक और अजैविक की श्रेणी में विभाजित कर दें। जल-प्रदूषण के पाठ के दौरान बच्चे जल स्रोतों और जलाशयों का परीक्षण करें और फिर उन्हें प्रदूषण के प्रकारों से जोड़ कर देखें। यह गतिविधि स्वच्छ जल की कमी से होने वाली बीमारियों के मुद्दों को उठाने

ज्ञान–निर्माण में सहभागिता

अंतर्निहित परिवर्तनशीलता के कारण प्रकृति का हर रूप अनूठा होता है। इसलिए इसकी समझ केवल शास्त्रीय वैज्ञानिक दृष्टि से प्रयोग द्वारा विकसित नहीं हो सकती, जिसे बारबार दोहराया जाए। बल्कि इस प्रकार की जटिलताओं की समझ के लिए विशिष्ट स्थान और समय अवलोकनों की आवश्यकता है। उनको सावधानीपूर्वक दर्ज कर, उनकी पद्धतियों, प्रक्रियाओं का विश्लेषण कर इसका पता लगाने की आवश्यकता है कि वे व्यवस्थाएँ कैसे विशिष्ट अर्थों में एक दूसरे से अलग हैं। भारतीय पर्यावरण के विविध पहलुओं के शायद ही उत्तम अभिलिखित दस्तावेज़ मौजूद हों, जैसे भू-जल स्तर की गहराई। विद्यार्थियों के प्रोजेक्ट के माध्यम से इस प्रकार का दस्तावेज़ तैयार करना संभव है। यह संभव है कि इस प्रकार के तमाम प्रोजेक्ट रपटों को एक सर्वसुलभ वेबसाइट पर डाला जा सके, ताकि भारतीय पर्यावरण पर एक पारदर्शी और विस्तृत ज्ञानभंडार तैयार किया जा सके। न केवल विशेषज्ञ, बल्कि रुचि रखने वाले अन्य नागरिकों को भी उनके परिणामों के अध्ययन के लिए बुलाया जाए, उसको ठीक करने वाली एक व्यवस्था तैयार की जाए ताकि भारतीय पर्यावरण परिदृश्य की जैविक समझ विकसित हो सके और उसे सुधारने की दिशा में सकारात्मक रूप से कुछ ठोस कदम उठाने के बारे में सोचा जा सकें। कुछ बरसों तक इस तरह के आँकड़ों को इकट्ठा करके पारिस्थितिकीय बदलावों की सार्थक समझ बनाई जा सकती है और तुलना द्वारा यह देखा जा सकता है कि क्या और क्यों हो रहा है। इस प्रकार के ज्ञान–निर्माण संबंधी गतिविधि को शैक्षणिक प्रक्रिया का हिस्सा बनाकर शिक्षा के अनुभव की गुणवत्ता को काफ़ी हद तक बढ़ाया जा सकता है।

में भी सहायक होगी। जबकि हम बच्चों को प्रदूषित जल की तस्वीरें दिखाकर उस पर टिप्पणी करने को कहते हैं। चंद्रमा और उसके चक्रों का अध्ययन करते हुए कितनी अध्यापिकाएँ असल में बच्चों को रात में चाँद देखने के लिए और अगले दिन उसके बारे में बात करने के लिए कहती हैं? बच्चों से स्थानीय पक्षियों और पेड़ों के नाम पूछने के बजाए, पाठ्यपुस्तकें उन सर्वव्यापक चीजों का नाम लेती हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे सारे संसार से संबंधित हैं फिर भी कहीं से भी संबंधित नहीं हैं। कक्षा आठ के शिक्षार्थी अगर प्रकाश–संश्लेषण के पाठ के दौरान उसे अपने आस–पास के पेड़–पौधों से जोड़ेंगे, तभी यह प्रश्न उठाने की सोच पाएँगे कि ''क्रोटन का पौधा जिसकी एक भी पत्ती हरी नहीं होती, सारी ही पत्तियाँ रंगीन होती हैं, वह अपना भोजन कैसे बनाता है?'' जब स्कूल के अंदर आसपास का जीवंत संसार चिंतन के लिए उपलब्ध होगा तभी शिक्षार्थी पर्यावरण के मुद्दों के प्रति सजग होंगे और उनके प्रति अपनी रुचि को पोषित कर पाएँगे।

इसीलिए स्थानीय चीजें एक स्वाभाविक अधिगम का स्रोत हैं जिन्हें कक्षा में कार्य संपादन के निर्णय लेते समय प्रधानता देनी चाहिए। भाषा एवं सामाजिक विज्ञानों की विषय–वस्तु का चयन करते हुए यह महत्त्वपूर्ण है कि संविधान में स्थापित मूल्यों एवं आदर्शों को ध्यान में रखा जाए। कक्षा की गतिविधियों के संपादन में स्थानीय संदर्भ को शामिल करने का आशय होगा कि शिक्षक चुनाव करते हुए गंभीर प्रयत्न करें ताकि उनके चयन शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से कल्पनाशील और नैतिक दृष्टि से सही हों। जब केरल में रहने वाले बच्चों को राजस्थान के रेगिस्तानी परिवेश के बारे में परिचय कराया जाए तो विवरण इतना समृद्ध होना चाहिए कि बच्चों को वहाँ की प्राकृतिक दुनिया की अनुभूति हो पाए। वे उसकी विशिष्टताएँ और विविधताएँ समझ पाएँ बजाए इसके कि सिर्फ ऊँट और रेतीले टीले की बात करते रहें। वे आश्चर्य कर पाएँ कि इतने गर्म स्थान में लोग कम कपड़े पहनने की बजाए अधिक कपड़े पहनते हैं। बच्चे वहाँ के जीवन और अपने आसपास के जीवन की तुलना कर पाएँ और ऐसे सवाल पूछ सकें कि दोनों में क्या समानताएँ और क्या असमानताएँ हैं।

स्थानीय परिवेश केवल भौतिक-प्राकृतिक नहीं होता, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक भी होता है। हर बच्चे की घर में अपनी आवाज़ होती है। स्कूल के लिए आवश्यक है कि कक्षा में भी वह आवाज़ सुनी जाए। समुदायों का सांस्कृतिक स्रोत भी प्रचुर होता है, लोककथाएँ, लोकगीत, चुटकुले, कलाएँ आदि जो स्कूल में भाषा और ज्ञान को समृद्ध बना सकते हैं। इससे मौखिक इतिहास भी समृद्ध होगा। लेकिन हम कक्षा में चुप्पी को लादकर बच्चों को दबाते हैं।

2.8 स्कूली ज्ञान और समुदाय

यह ज़रूरी है कि सामाजिक-सांस्कृतिक संसार के अनुभवों को भी पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए।

स्थानीय ज्ञान परंपराएँ

भारत में ऐसे भी कई समुदाय और व्यक्ति हैं जो भारत के पर्यावरण के विविध रूपों की सूचनाओं और उनके प्रबंधन संबंधी ज्ञान के भंडार हैं, जो उन्होंने पीढ़ियों से परंपरागत ज्ञान के रूप में पाने के साथ अपने व्यावहारिक अनुभव से भी प्राप्त किया है। इस प्रकार के ज्ञान में : पौधों का नामकरण और वर्गीकरण, जल-संरक्षण और जल संचय के उपाय या टिकाऊ कृषि की प्रथा शामिल है। कभी-कभी ये उससे भिन्न भी हो सकते हैं जैसा स्कूल में विषय ज्ञान देते समय बताया जाता है। कभी तो इसकी पहचान भी नहीं हो पाती है कि यह ज्ञान महत्वपूर्ण है। इन स्थितियों में, स्कूल में शिक्षकों को विद्यार्थियों को स्थानीय परंपराओं, और लोगों के पर्यावरण संबंधी व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित परियोजना तैयार करने में मदद करनी चाहिए। इसमें स्कूली परंपरा से उसकी तुलना को भी शामिल किया जा सकता है। कुछ मामलों में, जैसे कि पौधों के वर्गीकरण के मामले में, हो सकता है कि दोनों परंपराओं के मानदंड समानांतर हों और अपने-अपने मुताबिक दोनों महत्वपूर्ण हों। अन्य दृष्टान्तों में, जैसे बीमारी के वर्गीकरण और उनके उपचार के मामले में यह स्थानीय परंपरा के विपरीत भी हो सकते हैं। बहरहाल, सभी प्रकार के ज्ञान को संवैधानिक मूल्यों और परंपराओं के अनुकूल होना चाहिए।

इस बात की ज़रूरत है कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों में निरूपित जीवन-शैली और लोगों में अनेकत्व की अभिव्यक्ति एवं चित्रण को पहचानें। इन वर्णनों में इसका ध्यान रखा जाना चाहिए कि किसी भी समुदाय का अतिसरलीकरण न हो, न उन पर कोई ठप्पा लगाया जाए, न ही उनके बारे में कोई निर्णय सुनाया जाए। विद्यार्थियों के लिए यह और भी बेहतर होगा कि वे सामाजिक अध्ययन के पाठ के अंतर्गत स्थानीय सामाजिक समूहों का खुद ही चित्रण करें। बच्चे सीधे ग्राम पंचायत के सदस्य से संपर्क-संवाद कर सकते हैं। उनको स्कूल में बुलाया जाए और वे विस्तार से बताएँ कि विकेन्द्रीकरण ने स्थानीय नागरिक मुद्दों को संबोधित करने में कैसे मदद की है। स्थानीय मौखिक इतिहास को भी प्रादेशिक और राष्ट्रीय इतिहास से जोड़ा जा सकता है। लेकिन सामाजिक संदर्भ, पाठ्यचर्या विकसित करने वालों एवं अध्यापिकाओं से यह माँग करता है कि वे विवेचनात्मक जागरूकता लाएँ और उस संदर्भ से बहुत ही सतर्क एवं संवेदनशील रूप से जुड़ें। लिंग, जाति, वर्ग एवं धर्म की समुदाय आधारित अस्मिता, प्राथमिक अस्मिता होती है लेकिन वह बेहद उत्पीड़क भी हो सकती है और सामाजिक भेदभाव और ऊँच-नीच को कई बार पुख्ता भी करती है। स्कूली ज्ञान वह दृष्टि भी दे सकता है जिसके द्वारा बच्चे सामाजिक यथार्थ की एक आलोचनात्मक समझ बनाएँ। स्कूली ज्ञान बच्चों को ऐसे मौके भी दे सकता है कि वे घर के अनुभवों और वहाँ पैदा हुई चिंताओं के बारे में बात कर पाएँ।

समुदायों के पास किसी अनुभव या ज्ञान को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाने या न बनाने को लेकर प्रश्न हो सकते हैं। इसलिए स्कूल को समुदायों के साथ एक रिश्ता बनाने के लिए तैयार रहना चाहिए, उनकी आशंकाओं को सुनना चाहिए और उन्हें ऐसे निर्णयों के शैक्षणिक मूल्यों के बारे में

समझाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक होगा कि शिक्षकों को पता हो कि क्यों किसी चीज़ को शामिल किया गया और किसी को क्यों नहीं। साथ ही, उनको इन मुद्दों को लेकर अभिभावकों का विश्वास भी अर्जित करना होगा कि बच्चे कक्षा में घर की भाषा प्रयोग करें, उन्हें प्रजनन एवं सेक्स के विषय में पढ़ाया जाए, प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों को खेल-खेल की विधि से पढ़ाना और लड़कों को नाचने और गाने के लिए प्रेरित करना ज़रूरी क्यों है ? सिर्फ यह तर्क पर्याप्त नहीं है कि निर्णय राज्य स्तर पर लिए जाते हैं। अगर हमें धर्मनिरपेक्ष शिक्षा में हर वर्ग के बच्चे को शामिल करना है तो पाठ्यचर्या संबंधी विकल्पों को लेकर उन सभी लोगों से चर्चा करनी होगी जो शिक्षा के प्रति उत्तरदायित्व रखते हैं।

2.9 कुछ विकासमूलक विचार

बच्चों मे रुचि, शारीरिक क्षमता, भाषिक क्षमता, अमूर्तन और सामान्यीकरण की क्षमता का विकास स्कूल-पूर्व शिक्षा से लेकर माध्यमिक स्तर की शिक्षा तक में होता है। यह समय गहन वृद्धि एवं विकास का, रुचियों एवं क्षमताओं में मूलभूत बदलाव का होता है। इसलिए पाठ्यचर्या के क्षेत्रों के चयन एवं व्यवस्थापन के प्रस्ताव को निश्चित करने के लिए यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण आयाम है।

ज्ञान के सृजन एवं पुनः सृजन के लिए अनुभव के आधार, भाषायी क्षमताओं एवं प्राकृतिक संसार और दूसरे लोगों के साथ अंतःक्रिया की ज़रूरत होती है । स्कूल में पहली बार प्रवेश करते समय बच्चा संसार के ज्ञान का सृजन शुरू कर चुका होता है। हर चीज जो बच्चे बाद में सीखते हैं वह उस ज्ञान से संबंधित होता है जो वह स्कूल में लेकर आते हैं। यह ज्ञान भी अंतःप्रज्ञात्मक होता है। स्कूल अवसर देता है कि इसी ज्ञान को आधार मान कर, सचेत रह कर और जुड़ाव के साथ आगे बढ़ा जाए। सीखने के शुरुआती स्तर पर,

पाठ्यचर्या में ज्ञान के अभिगम संबंधी कुछ सिद्धांत

- विषय द्वारा दिए गए कौशलों के आधार पर सामाजिक यथार्थ और परिवेश के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास।
- स्थानीय के साथ जुड़ाव, ज्ञान को संदर्भों में रखा जाए ताकि उसकी प्रासंगिकता और अर्थपूर्णता महसूस की जा सके, स्कूल के बाहर के अनुभवों की पुष्टि हो पाए, अवलोकन, वर्गीकरण, श्रेणियाँ बना कर, प्रश्न पूछ कर इन अनुभवों के संबंध में तर्क करके स्वयं सीखना।
- विभिन्न अनुशासनों में अंतर्संबंध देखना और ज्ञान में अंतर्निहित जुड़ाव को समझना ।
- जाँच के खुलेपन और उपयोगिता को पहचानना और तथ्यों की अस्थायी प्रकृति को समझना ।
- स्थानीय ज्ञान और स्थानीय क्षेत्र के रिवाजों और प्रथाओं के साथ जुड़ना और जहाँ भी संभव हो इन्हें स्कूली ज्ञान के साथ जोड़ना ।
- प्रश्न करने को प्रोत्साहन देना और नए प्रश्नों की तरफ बढ़ने के लिए अवसर प्रदान करना।
- कक्षायी प्रक्रियाओं में 'समानता' के मुद्दों के प्रति संवेदनशील होना और कई समूहों द्वारा ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को सीख पाने को लेकर स्थापित रूढ़िबद्ध धारणाओं और भेदभाव के प्रति सजग होना (उदाहरण-लड़कियों को क्षेत्राधारित परियोजनाएँ न देना, नेत्रहीनों को गणित सीखने से वर्जित करना, इत्यादि।)
- कल्पनाशीलता का विकास और कल्पना एवं अतिकल्पना को सजीव रखना।

स्कूल-पूर्व से प्राथमिक स्कूली वर्षो में पाठ्यचर्या की सभी गतिविधियों में भाषा और गणित को एक महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। विषयों में विभाजन उतना महत्वपूर्ण नहीं है और ऊपर जिन ज्ञान क्षेत्रों की चर्चा की गई है उन सभी को समेकित किया जा सकता है और बच्चों के सामने परिवेश के शैक्षिक अनुभवों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है । इसमें प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश

के साथ गहन अंतःक्रिया, सामजिक अंतःक्रियाओं की समझ, अपने हाथ से काम करना और अपने सौन्दर्य बोध की क्षमताओं का विकास शामिल है। प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश के ये शुरुआती समेकित अनुभव बाद में माध्यमिक कक्षाओं में विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान में विभाजित हो जाएंगे।

उच्च माध्यमिक कक्षाओं में ऊपर चर्चित ज्ञान के स्वरूपों को ध्यान में रखते हुए बेहतर रूप से परिभाषित विषयों का उद्‌गमन हो सकता है। इस स्तर पर यह हर विषय के लिए संभव होना चाहिए कि बच्चे प्राकृतिक, सामाजिक, गणितीय और भाषायी आंकड़ों के संकलन में व्यस्त रहें। उन आंकड़ों को वर्गीकृत करें और विशिष्ट ज्ञान क्षेत्रों, जैसे नैतिक समझ और समीक्षात्मक सोच के द्वारा उनका विश्लेषण करें। इस स्तर पर सामाजिक मुद्दों पर खोज, चिंतन और बिना सीमाएँ बांधे, ज्ञान के लिए अगर जगह बनाई जाए तो वह बच्चों में विवेकपूर्ण समझ को प्रोत्साहन दे पाती है।

जब तक बच्चे शिक्षा के माध्यमिक स्तर तक पहुँचते हैं वे पर्याप्त ज्ञान आधार, अनुभव, भाषायी क्षमताएँ और ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों के साथ जुड़ने की परिपक्वता ग्रहण कर चुके होते हैं जिसमें अवधारणाएँ, ज्ञान की संरचना, खोज–परीक्षण के तरीके और पुष्टिकरण के तरीके शामिल हैं। इसीलिए स्कूली विषयों को उपरोक्त आधारभूत रूपों तथा उच्च शिक्षा में पहचाने गए अनुशासनों के साथ गहरे रूप से जोड़ा जा सकता है।

ज्ञान के सभी रूपों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व, समानताओं पर ज़ोर, विशिष्टताओं और उनके व्यापक आंतरिक जुड़ाव तब महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं जब विषयों की सीमारेखा सुस्पष्ट रूप से परिभाषित हो।

3.1 भाषा
3.2 गणित
3.3 विज्ञान
3.4 सामाजिक विज्ञान
3.5 कला शिक्षा
3.6 स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा
3.7 काम और शिक्षा
3.8 शांति के लिए शिक्षा
3.9 आवास और सीखना
3.10 अध्ययन और आकलन की योजनाएँ
3.11 आकलन और मूल्यांकन

अध्याय 3 : पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्थाएँ और आकलन

सामाजिक अपेक्षाओं और विभिन्न व्यापक अनुशासनों के अध्ययन में आए बड़े बदलावों के बावजूद, पाठ्यचर्या योजना के लिए प्रासंगिक प्रमुख क्षेत्र बहुत लंबे समय तक स्थिर ही रहे हैं। यह आवश्यक है कि पाठ्यचर्या के प्रत्येक क्षेत्र पर गहन पुनर्विचार किया जाए ताकि उभरती सामाजिक ज़रूरतों के संदर्भ में प्रवेश के विशेष बिंदु पहचाने जा सकें। इस संबंध में कलाओं, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा की भूमिका व स्थिति पर विशेष ध्यान देना होगा, जिन्हें लगभग एक सदी पहले 'पाठ्यक्रम-सहगामी' क्षेत्र की परिधि में डाल दिया गया था। बढ़ते बच्चे की रचनात्मकता का प्रमुख भाग है सौंदर्यबोध एवं अनुभव। इसलिए हमें कलाओं को बाकायदा पाठ्यचर्या के क्षेत्र में लाना होगा— उन्हें अधिगम के सभी क्षेत्रों में समाहित कर विभिन्न अवस्थाओं में प्रासंगिक कलाओं को उनकी पहचान देनी होगी। काम, शांति और स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा की भी ऐसी ही स्थिति है। आर्थिक, सामाजिक व व्यक्तिगत विकास के लिए इन तीनों का बुनियादी महत्त्व है। यह

सुनिश्चित करने में स्कूलों की महत्वपूर्ण भूमिका है कि आत्मनिर्भरता, शांति-आधारित मूल्यों व स्वास्थ्य की संस्कृति में बच्चों का समाजीकरण हो।

3.1 भाषा

इस दस्तावेज़ में भाषा में द्वि/बहुभाषिकता निहित है। और जब हम घर की भाषा(ओं) और मातृभाषा(ओं) की बात करते हैं तो इसके अंतर्गत घर की भाषा, बड़े कुनबे की भाषा, आस-पड़ोस की भाषा आदि आ जाती हैं, जो बच्चा स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण से ग्रहण कर लेता है। बच्चों में भाषा की जन्मजात क्षमता होती है। हम रोज़मर्रा के अनुभव से जानते हैं कि ज्यादातर बच्चे, स्कूल की शिक्षा की शुरुआत से पहले ही भाषा की जटिलताओं और नियमों को आत्मसात कर पूर्ण भाषिक क्षमता रखते हैं। कई बार जब बच्चे स्कूल आते हैं तो उनमें पहले से ही दो या तीन भाषाओं को समझने और बोलने की क्षमता होती है। वे न केवल उन भाषाओं को सही-सही बोल लेते हैं, बल्कि उनका उचित प्रयोग भी कर रहे होते हैं। यहाँ तक कि भिन्न प्रतिभा वाले बच्चे, जो बोल नहीं पाते वे भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए उतने ही जटिल वैकल्पिक संकेतों और प्रतीकों का विकास कर लेते हैं।

भाषाएँ एक प्रकार से स्मृतिकोश का भी काम करती हैं, जिसमें अपने सहवक्ताओं से विरासत में मिले संकेतों के साथ अपने जीवन-काल में बनाए संकेत भी शामिल होते हैं। ये वे माध्यम भी हैं जिनसे अधिकतर ज्ञान का निर्माण होता है, इसलिए इनका मनुष्य के विचार और उसकी अस्मिता से गहरा संबंध होता है। वास्तव में, उनका अस्मिता के साथ इतना गहरा संबंध होता है कि बच्चे की मातृभाषा(ओं) को नकारना या उनको मिटाने के प्रयास उसके व्यक्तित्व में हस्तक्षेप की तरह लगते हैं। प्रभावी समझ और भाषा(ओं) के प्रयोग के माध्यम से बच्चे विचारों, व्यक्तियों और वस्तुओं तथा अपने आसपास के संसार से अपने आपको जोड़ पाते हैं।

> बहुभाषिकता, जो बच्चे की अस्मिता का निर्माण करती है और जो भारत के भाषा-परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण है, उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा उसे लक्ष्य के रूप में रखना रचनात्मक भाषा शिक्षक का कार्य है। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है बल्कि इससे यह भी सुनिश्चित हो सकता है कि हर बच्चा स्वीकार्य और संरक्षित महसूस करे और भाषिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पीछे न छोड़ा जाए।

अगर हम भाषा शिक्षण के लिए स्कूल में कोई कार्यक्रम शुरू करते हैं तो यह महत्वपूर्ण है कि बच्चे की सहज भाषायी क्षमता को पहचानें और याद रखें कि भाषाएँ सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से बनती हैं और हमारे दैनंदिन व्यवहार से बदलती रहती हैं। शिक्षा में भाषाओं के लिए आदर्श यही है कि उनका इसी संसाधन के आधार पर विकास हो और साक्षरता के विकास के साथ (लिपियों में ब्रेल भी) अकादमिक भाषा के रूप में इसे विकसित करने के लिए समृद्ध भी किया जाए। जिन बच्चों में भाषा संबंधी अक्षमता हो उनके लिए मानक संकेत भाषा अपनाई जाए जिससे उनके सतत और पूर्ण विकास को समर्थन मिलता रहे। विद्यार्थियों की भाषिक क्षमता की पहचान से उनका स्वयं के और अपनी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति विश्वास भी बढ़ेगा।

3.1.1 भाषा शिक्षा

भारत की भाषिक विविधता एक जटिल चुनौती तो पेश करती ही है, लेकिन वह कई प्रकार के अवसर भी देती है। भारत केवल इस मामले में ही अनूठा नहीं है कि यहाँ अनेक प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं, बल्कि उन भाषाओं में अनेक भाषा-परिवारों का प्रतिनिधित्व भी है। दुनिया के और किसी भी देश में पांच-भाषा परिवारों की भाषाएँ नहीं पाई

> कई अध्ययनों से पता चला है कि द्विभाषी क्षमता संज्ञानात्मक वृद्धि, सामाजिक सहिष्णुता, विस्तृत चिंतन और बौद्धिक उपलब्धियों के स्तर को बढ़ा देती है। सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर बहुभाषिकता एक ऐसा संसाधन है जिसकी तुलना किसी भी अन्य राष्ट्रीय संसाधन से की जा सकती है।

जातीं। संरचना के स्तर पर वे इतनी भिन्न हैं कि उन्हें विभिन्न भाषा परिवारों में वर्गीकृत किया जा सकता है जिनके नाम हैं - इंडो-आर्यन, द्रविड़, ऑस्ट्रो-एशियाटिक, तिब्बतो-बर्मन और अंडमानी। ये भाषाएँ आपस में सतत संपर्क-संवाद भी करती रहती हैं। अनेक भाषिक और सामाजिक-भाषिक विशेषताएँ ऐसी हैं जो सभी भाषाओं में समान रूप से पायी जाती हैं। यह इस बात का सबूत है कि भारत में विभिन्न भाषाएँ और संस्कृतियाँ सदियों से एक दूसरे को समृद्ध करती रही हैं। शास्त्रीय भाषाएँ; जैसे- लैटिन, अरबी, फारसी, तमिल और संस्कृत विभक्ति प्रधान व्याकरण के मामले में और सौंदर्यबोध की दृष्टि से काफी समृद्ध रही हैं और हमारे जीवन को प्रदीप्त करती रही हैं, क्योंकि अनेक भाषाएँ उनसे शब्द लेती रहती हैं।

आज, हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि द्विभाषिकता या बहुभाषिकता से निश्चित संज्ञानात्मक लाभ होते हैं। त्रिभाषा-फॉर्मूला भारत की भाषा-स्थिति की चुनौतियों और अवसरों को संबोधित करने का एक प्रयास है। यह एक रणनीति है जिसे कई भाषाएँ सीखने के मार्ग को प्रशस्त करना चाहिए। इसे कार्यरूप और भावरूप दोनों ही में अपनाने की आवश्यकता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य भारत में बहुभाषिकता और राष्ट्रीय सद्भाव का प्रसार है। निम्नलिखित दिशा-निर्देश इन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं :

- भाषा शिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए, केवल कई भाषाओं के शिक्षण के ही अर्थ में नहीं, बल्कि रणनीति तैयार करने के लिहाज से भी ताकि बहुभाषिक कक्षा को एक संसाधन के तौर पर प्रयोग में लाया जाए।
- बच्चों की घरेलू भाषा(एँ), जैसा कि 3.1 में पारिभाषित किया गया है, स्कूल में शिक्षण का माध्यम होनी चाहिए।
- अगर स्कूल में उच्चतर स्तर पर बच्चों की घरेलू भाषा(ओं) में शिक्षण की व्यवस्था न हो, तो प्राथमिक स्तर की स्कूली शिक्षा अवश्य घरेलू भाषा(ओं) के माध्यम से ही दी जाए। यह आवश्यक है कि हम बच्चे की घरेलू भाषाओं को सम्मान दें। हमारे संविधान की धारा 350-क के मुताबिक, 'प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।'
- बच्चे प्रारंभ से ही बहुभाषिक शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। त्रिभाषा फॉर्मूला को उसके मूलभाव के साथ लागू किए जाने की ज़रूरत है, ताकि वह बहुभाषी देश में बहुभाषी संवाद के माहौल को बढ़ावा दे।
- गैर-हिंदी भाषी राज्यों में, बच्चे हिंदी सीखते हैं। हिंदी प्रदेशों के मामले में, बच्चे वह भाषा सीखें जो उस इलाके में नहीं बोली जाती है। इन भाषाओं के अलावा आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन भी शुरू किया जा सकता है।
- बाद के स्तरों पर शास्त्रीय और विदेशी भाषाओं से परिचय करवाया जा सकता है।

3.1.2 घरेलू/प्रथम भाषा(एँ) या मातृभाषा शिक्षा

यह ज़ाहिर है कि अपनी सहजात भाषिक क्षमता और परिवार तथा आसपास के लोगों से अंतःक्रिया का अनुभव लेकर जब बच्चे स्कूल आते हैं तो उनमें अपनी भाषा या कई मामलों में अनेक

> साहित्य भी बच्चों की रचनाशीलता को बढ़ा सकता है। कोई कहानी, कविता या गीत सुनकर बच्चे भी स्वयं कुछ लिखने की दिशा में प्रवृत्त हो सकते हैं। उनको इसके लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे अलग-अलग रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यमों को आपस में मिलाएँ।

भाषाओं में संवाद करने की क्षमता पूर्णतः विकसित होती है। वे केवल हजारों शब्दों के साथ स्कूल नहीं आते, बल्कि भाषा की जटिल और समृद्ध संरचनाओं के नियम; जैसे – ध्वनि, शब्द, वाक्य और संवाद के स्तर पर भी उनका पूरा नियंत्रण होता है। एक बच्चा न केवल सही-सही समझना और बोलना जानता है, बल्कि वह अपनी भाषा(ओं) का उचित प्रयोग भी करता है। बच्चे व्यक्ति, स्थान और विषय के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन कर सकते हैं। बच्चों के पास स्पष्टतः भाषा की जटिल संरचनाओं को ध्वनि प्रवाह के द्वारा अमूर्त करने की संज्ञानात्मक क्षमताएँ होती हैं। कक्षा में क्षमता को उच्च स्तर के संवाद तथा ज्ञान-संवेदना के द्वारा विकसित करना ही प्रथम भाषा के शिक्षण का उद्देश्य होना चाहिए। कक्षा 3 के बाद से मौखिक और लिखित माध्यमों से उच्चस्तरीय संवाद कौशल और आलोचनात्मक चिंतन के विकास के प्रयास हों। प्राथमिक स्तर पर बच्चों की भाषा(ओं) को बिना सुधारे उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए जिस रूप में वे होती हैं। कक्षा 4 के बाद अगर समृद्ध और रुचिकर मौके दिए जाएँ, तो बच्चे स्वयं भाषा के मानक रूप को ग्रहण कर लेते हैं, लेकिन इस प्रक्रिया के दौरान बच्चे की घरेलू भाषा के प्रति उचित सम्मान का भाव बना रहना चाहिए। यह स्वीकार करें कि गलतियाँ, अधिगम का हिस्सा होती हैं और बच्चे जब इस लायक हो जाएँ तो वे स्वयं उसमें सुधार कर लेते हैं। गलतियाँ और कमियों पर ध्यान दिए जाने की बजाय अधिक समय बच्चों को विस्तृत, रुचिकर और चुनौतीपूर्ण निवेश दिए जाने चाहिए।

स्कूल में घरेलू भाषाओं के शिक्षण के महत्व का बढ़ा-चढ़ा कर बखान करना कठिन है। यद्यपि बच्चे स्कूल में बुनियादी संवाद क्षमता के कौशल में समर्थ होकर आते हैं, उनको स्कूल में संज्ञानात्मक रूप से उच्चस्तरीय भाषिक क्षमता को अपनाने की ज़रूरत होती है। बुनियादी भाषा-क्षमता ऐसे मामलों के लिए तो पर्याप्त होती है जहाँ सुसंदर्भित और संज्ञानात्मक रूप से कुछ खास हवाले नहीं देने होते, जैसे बच्चों के अपने समूह में बातचीत के लिए। लेकिन उच्च स्तर की अभिव्यक्ति-क्षमता की आवश्यकता तब पड़ती है जब परिस्थितियों के संदर्भ कमज़ोर हों और वे संज्ञानात्मक माँग करें, जैसे किसी अमूर्त विषय पर निबंध लिखना। यह अब स्थापित हो चुका है कि उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का एक भाषा से दूसरी भाषा में आसानी से स्थानांतरण हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम उसके लिए हर संभव प्रयत्न करें ताकि स्कूल स्तर पर भारतीय भाषाओं में सतत शिक्षा को समृद्ध किया जा सके।

भाषा शिक्षण केवल भाषा की कक्षा तक सीमित नहीं होता। विज्ञान, सामाजिक विज्ञान या गणित की कक्षाएँ भी एक तरह से भाषा की ही कक्षा होती हैं। किसी विषय को सीखने का मतलब है उसकी अवधारणाओं को सीखना, उसकी शब्दावली को सीखना, उनके बारे में आलोचनात्मक ढंग से चर्चा करना और उनके बारे में लिख सकना। कुछ विषयों को लेकर विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाए कि वे अलग-अलग पुस्तकों का अध्ययन करें या उन भाषाओं में लोगों से बातचीत करें, इंटरनेट से अंग्रेज़ी में सामग्री एकत्रित करें। भाषा को लेकर पाठ्यचर्या में ऐसी नीति अपनाने से स्कूल में बहुभाषिकता को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही, भाषा की शिक्षा कुछ अनूठे अवसर उपलब्ध कराती है। कहानी, कविता, गीतों और नाटकों के माध्यम से बच्चे अपनी सांस्कृतिक धरोहर से जुड़ते हैं और इससे उनको अपने अनुभव विकसित करने और दूसरों के प्रति संवेदनशील होने के अवसर मिलते हैं। हम यह

भी ध्यान दिला दें कि बच्चे इस प्रकार की गतिविधियों के माध्यम से व्याकरण भी अधिक आसानी से सीख सकते हैं न कि उबाऊ व्याकरण शिक्षण से।

विभिन्न योग्यताओं वाले बच्चे सामान्य सामाजिक व्यवहारों से बुनियादी भाषा-क्षमता का विकास कर लेते हैं। लेकिन उनको विशेष रूप से तैयार की गई सामग्री अलग से भी दिए जाने की ज़रूरत है ताकि उनकी वृद्धि और विकास पर्याप्त ढंग से हो सके। अन्य बच्चों के लिए ब्रेल और संकेत भाषा वैकल्पिक अध्ययन के तौर पर रखी जा सकती है।

3.1.3 द्वितीय भाषा सीखना

भारत के बहुभाषी समाज में अंग्रेज़ी एक वैश्विक भाषा है। यहाँ अंग्रेज़ी-शिक्षण में विविधता की स्थिति दो कारणों से है, एक शिक्षकों की अंग्रेज़ी में दक्षता और विद्यार्थियों का स्कूल से बाहर अंग्रेज़ी भाषा से सामना। अंग्रेज़ी आरंभ करने के स्तर का मुद्दा जनता की आकांक्षाओं का राजनीतिक प्रत्युत्तर है, नाकि इसके पीछे कोई अकादमिक या साध्यता का मुद्दा है। अंग्रेज़ी को पाठ्यचर्या में किस स्तर से पढ़ाया जाए इस बारे में जनता की प्राथमिकताओं का आदर करना होगा इस आश्वासन के साथ कि हम उस तंत्र को और अधिक नीचे न ले जाएँ जो अपेक्षित परिणाम देने में असफल रहा है।

द्वितीय भाषा की पाठ्यचर्या के दोहरे लक्ष्य हैं: वैसी बुनियादी दक्षता प्राप्त करना, जैसी प्राकृतिक भाषा ज्ञान में अर्जित की गई हो, और साक्षरता द्वारा भाषा का ऐसा विकास कि वह अमूर्त चिंतन और ज्ञान का उपकरण बने (उदाहरण के लिए)। यह संपूर्ण पाठ्यचर्या संबंधी उपागम की बात करता है, जो अंग्रेज़ी और अन्य विषयों तथा अंग्रेज़ी या अन्य भारतीय भाषाओं की दीवार को तोड़ दे। आरंभिक स्तर पर, अंग्रेज़ी वह भाषा हो सकती है जिसके माध्यम से बच्चों को ऐसी शैक्षणिक गतिविधियाँ करवाई जाएँ जिससे दुनिया के बारे में बच्चे की जागरूकता बढ़े। बाद के चरणों में, सभी अधिगम भाषा के ज़रिए होते हैं। उच्च स्तर का भाषा-कौशल सभी भाषाओं में समान होता है; पढ़ना (उदाहरण के लिए) एक ऐसा कौशल है जो दूसरों को सिखाया जा सकता है। एक भाषा में इसके सुधार का असर अन्य भाषाओं में भी सुधार लाता है। अपनी भाषा में पढ़ने में यदि कोई असफल होता है, तो उससे दूसरी भाषा के पठन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अंग्रेज़ी एकाकी नहीं है। अंग्रेज़ी शिक्षण का लक्ष्य ऐसे बहुभाषी लोगों को तैयार करना है जो हमारी भाषाओं को समृद्ध कर सकें; यह एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण रहा है। विभिन्न राज्यों में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेज़ी का स्थान बनाने की आवश्यकता है, जहाँ अन्य भाषाएँ अंग्रेज़ी सीखने-सिखाने को समृद्ध करें; और अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों में अंग्रेज़ी के वर्चस्व को कम करने के लिए अन्य भारतीय भाषाओं के मूल्यवर्धन की ज़रूरत है। अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों की तुलनात्मक सफलता यह बताती है कि भाषा तब सीखी जाती है जब वह भाषा के रूप में नहीं पढ़ाई जाती बल्कि सार्थक संदर्भों से जोड़कर उसे पढ़ाया जाता है। इसलिए अंग्रेज़ी को अन्य विषयों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए; प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से संपूर्ण पाठ्यचर्या के अंतर्गत भाषा शिक्षण का विशेष महत्व है और बाद में सभी शिक्षण एक अर्थ में भाषा शिक्षण ही होता है। यह दृष्टिकोण 'विषय के रूप में अंग्रेज़ी' और 'माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी' की दूरी को पाट सकेगा। इस तरह से हम समान

> संविधान द्वारा हर बच्चे को आठ साल की शिक्षा की गारंटी दी गई है, जिसके अंतर्गत अंग्रेज़ी भाषा में दक्षता चार वर्षो की अवधि में प्राप्त करना संभव होना चाहिए। प्रारंभ से ही स्कूल में बहुभाषिक माहौल बनाने से उसके दुष्प्रभाव भी सामने आ सकते हैं। जैसे अपनी भाषा का क्षरण और न समझ पाने का बोझ।

स्कूली पद्धति की दिशा में प्रगति कर सकते हैं जिसमें भाषा शिक्षण और शिक्षण के माध्यम के रूप में भाषा के उपयोग में भेद न हो।

निवेश-समृद्ध संप्रेषण का वातावरण भाषा शिक्षण की पूर्व शर्त है, चाहे वह पहली भाषा हो या दूसरी। निवेश के अंतर्गत आते हैं – पाठ्यपुस्तकें, शिक्षार्थी द्वारा चयनित पाठ और कक्षा पुस्तकालय जिसमें अनेक विधाओं के लिए जगह हो; छपी सामग्री (उदाहरण के लिए युवा शिक्षार्थियों के लिए बड़ी पुस्तकें); एक से अधिक भाषा में समांतर पुस्तकें और सामग्री; मीडिया सामग्री (मैगजीन/समाचारपत्र के स्तंभ, रेडियो/ऑडियो कैसेट); और प्रामाणिक सामग्री। वंचित शिक्षार्थियों के लिए भाषा माहौल को समृद्ध बनाने की ज़रूरत है जिसके लिए स्कूलों को सामुदायिक शिक्षण केंद्र के रूप में विकसित करना चाहिए। इस दिशा में कई सफल नवाचार मौजूद हैं जिनके सामान्यीकरण को खोजने और बढ़ावा देने की ज़रूरत है। पद्धतियाँ और दृष्टिकोण विशिष्ट न हों, बल्कि मोटे तौर पर विस्तृत संज्ञानात्मक दर्शन के अनुकूल रहते हुए पारस्परिक रूप से समर्थक हों (जिसमें वायगोत्सकी, पियाजे और चॉमस्की के सिद्धांत शामिल हों)। उच्चस्तरीय कौशल (जिसमें साहित्यिक आस्वाद और जेंडर संबंधी दृष्टिकोण निर्धारण में भाषा की भूमिका शामिल है) विकसित करने की ओर तब ध्यान दिया जाए जब बुनियादी दक्षता सुनिश्चित हो चुकी हो।

शिक्षक की शिक्षा सतत, जहाँ वह शिक्षण कार्य कर रहा हो वहाँ (औपचारिक या अनौपचारिक सहायक व्यवस्थाओं द्वारा), साथ ही उसे तैयार करने वाली होनी चाहिए। दक्षता और व्यावसायिक जागरूकता को समान रूप से बढ़ावा दिए जाने की ज़रूरत है और व्यावसायिक जागरूकता जहाँ आवश्यक हो उसे शिक्षक की अपनी भाषा के माध्यम से दिए जाने की ज़रूरत है। जो भी शिक्षक अंग्रेज़ी पढ़ाते हों उनकी अंग्रेज़ी में बुनियादी दक्षता होनी चाहिए। हर शिक्षक में यह कौशल होना चाहिए कि वह परिस्थिति व स्तर के अनुसार उपयुक्त तरीके से अंग्रेज़ी पढ़ा सके। इसके लिए विविध प्रकार की सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए ताकि पाठ्यचर्या निवेश-समृद्ध हो और अर्थ पर ज़ोर दे।

भाषा-संबंधी मूल्यांकन को किसी विशेष पाठ्यक्रम के संदर्भ में उपलब्धियों से नहीं बाँधना चाहिए, बल्कि उसे भाषा दक्षता के मापने में पुनःनियोजित किया जाना चाहिए। मूल्यांकन को बाधा के रूप में देखने के बजाए अधिगम की समर्थक प्रक्रिया के रूप में देखने की ज़रूरत है। शिक्षार्थी की प्रगति का निरंतर आकलन होना चाहिए और पोर्टफोलियो के रूप में उसका लेखन रखना चाहिए। भाषा क्षमता में राष्ट्रीय मानदण्डों को विकसित करने की ज़रूरत है जिसके बाद वैकल्पिक अंग्रेज़ी भाषा के परीक्षणों का एक समुच्चय बनाया जाए जिससे पाठ्यचर्या में आज़ादी और मूल्यांकन के मानकीकरण के बीच संतुलन हो। इससे अंग्रेज़ी की मौजूदा समस्या को हल करने में मदद मिलेगी क्योंकि कक्षा 10 की असफलता में अंग्रेज़ी एक मुख्य कारण है। विद्यार्थी को अंग्रेज़ी के बिना भी पास होने की इजाज़त दी जा सकती है अगर नियमित स्कूली व्यवस्था के बाहर अंग्रेजी दक्षता के लिए सर्टिफिकेट देने के लिए (अनुदेशन देने के लिए) वैकल्पिक व्यवस्था बनाई जाए।

3.1.4 पढ़ना–लिखना सीखना

हालांकि हम भाषा के विभिन्न कौशलों को एकीकृत रूप में पढ़ाने की प्रस्तावना की ज़ोर-शोर से वकालत करते हैं लेकिन कई मामलों में स्कूल को पठन और लेखन पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है, खासकर घरेलू भाषाओं के संदर्भ में। दूसरी, तीसरी या शास्त्रीय या विदेशी भाषा के संदर्भ में वाचिक दक्षता सहित सभी कौशल महत्वपूर्ण हो जाते हैं। बच्चे सर्वांगीण परिस्थितियों में अधिक सीखते हैं जिनमें बच्चों को सार्थकता दिखती है

बजाय एक योगात्मक या बँधे बँधाए ढर्रे से जिसमें कोई अर्थ नहीं होता। समृद्ध और व्याख्यात्मक निवेश भाषा के सभी मुश्किल कौशलों को सीखने के लिहाज से महत्वपूर्ण होते हैं। कई प्रकार की संवाद स्थितियों में, जैसे फोन पर किसी को सुनकर संदेश को दर्ज करना, कई कौशल एकसाथ उपयोग में लाने पड़ते हैं। हम सचमुच चाहते हैं कि बच्चे समझ के साथ पढ़ें-लिखें। भाषा — कौशलों के पुंज के रूप में, चिंतन और अस्मिता के रूप में स्कूल के सभी विषयों में मौजूद है। बोलना और सुनना, पढ़ना और लिखना सभी सामान्य कौशल हैं और उनमें बच्चों की दक्षता, स्कूल में उनकी सफलता को प्रभावित करती है। कई स्थितियों में इन सभी कौशलों को एक साथ उपयोग में लाने की ज़रूरत होती है। इसलिए स्कूल स्तर पर भाषा का शिक्षण सभी की चिंता का कारण होना चाहिए, न कि केवल भाषा शिक्षक का दायित्व। साथ ही, भाषा के साथ जुड़े कौशलों को केवल प्राथमिक स्तर पर ही नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए, बल्कि जैसे-जैसे विषय में नयी आवश्यकताएँ पैदा हों उनको माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों तक ले जाना चाहिए। जीवन संबंधी कौशल, जैसे आलोचनात्मक चिंतन का कौशल, अन्य लोगों के साथ संप्रेषण के कौशल, तोलमोल करने/मना करने के कौशल, निर्णय लेने या समस्या सुलझाने के कौशल, और परिस्थितियों से निपटने तथा स्वयं की व्यवस्था आदि के कौशलों का रोज़मर्रा के जीवन की चुनौतियों और माँगों के संदर्भ में बड़ा महत्व होता है।

परंपरागत रूप से प्रशिक्षित भाषा-शिक्षक बोलने के प्रशिक्षण को, भाषा के सहभागी और अभिव्यक्तिमूलक कौशल पर ज़ोर देने के बजाय शुद्धता से जोड़ता है। इसीलिए कक्षा में बोलने को हमारी व्यवस्था में नकारात्मक मूल्य समझा जाता है और शिक्षक की काफ़ी ऊर्जा बच्चों को शांत कराने या उनके उच्चारण को ठीक करने में चली

बच्चे पढ़ना क्यों नहीं सीखते?

- शिक्षक शिक्षाशास्त्र के बुनियादी कौशलों में कमज़ोर होते हैं, यानी इस समझ की उनमें कमी पाई जाती है कि कहाँ विद्यार्थी समझा रहा है, कहाँ उपयुक्त प्रश्न पूछ रहा है। पढ़ना सीखने की प्रक्रिया की समझ का उनमें अभाव होता है जिसमें नीचे से ऊपर की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है, जिसमें पहचान और पाठ के अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया शामिल होती है। उनमें कई बार कक्षा प्रबंधन के कौशलों का भी अभाव होता है। उनका ध्यान गलतियों पर अधिक होता है न कि कल्पनाशीलता और अभिव्यक्ति पर।
- सेवा-पूर्व प्रशिक्षण शिक्षकों को पठन के शिक्षा-शास्त्र की तैयारी के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं देता, न ही सेवा-काल प्रशिक्षण में ही इस मुद्दे पर ध्यान दिया जाता है।
- पाठ्यपुस्तकें तदर्थ आधार पर तैयार की जाती हैं जिसमें पठन को लेकर कोई सुसंगत नीति नहीं होती।
- वंचित पृष्ठभूमि के बच्चे, विशेषकर प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थी, शिक्षकों द्वारा स्वयं को स्वीकार्य नहीं समझते और स्वयं को पाठ्यपुस्तकों से जोड़ नहीं पाते।

पठन शुरू करने का कारगर उपागम

- कक्षा में छपी हुई सामग्री की बहुतायत हो, संकेतों, चार्ट, कार्य संबंधी सूचना आदि उसमें लगे हों ताकि विभिन्न अक्षरों की ध्वनियाँ सीखने के साथ वे लिखित संकेतों की पहचान भी कर सकें।
- कल्पनाशील निवेशों की ज़रूरत है, जिसे एक योग्य पाठक हाव-भाव से पढ़े, आदि।
- विद्यार्थियों द्वारा बताए गए अनुभवों का लेखन और उनके द्वारा उस लिखित पाठ का वाचन।
- अतिरिक्त सामग्री का पठन : कहानियाँ, कविता आदि।
- प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थियों को इसका अवसर दिया जाना चाहिए कि वे अपने पाठ स्वयं तैयार करें और स्वयं द्वारा चुने हुए पाठों का कक्षा में योगदान दें।

जाती है। अगर शिक्षक बच्चे के बोलने को बकवास के बदले संसाधन के तौर पर देखे तो यह संभावना बढ़ जाएगी कि विरोध और नियंत्रण का दुष्चक्र बदल कर अभिव्यक्ति और प्रत्युत्तर का चक्र बन जाए। इस संबंध में विस्तृत ज्ञान उपलब्ध है कि कैसे बातचीत को आधार सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। सेवा-पूर्व और सेवा के दौरान प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों का इससे परिचय करवाना चाहिए। पाठ्यपुस्तक और शिक्षक मार्गदर्शिकाएँ तैयार करने वालों को शिक्षकों के लिए इस तरह के निर्देश लिखने चाहिए कि किस प्रकार विषयवस्तु को बच्चों की छोटे समूह में चर्चा द्वारा और ऐसी गतिविधियों के द्वारा आगे प्रवर्तन किया जाए जो बच्चों में तुलना और विपरीतता, आश्चर्य और स्मरण, अटकल और चुनौती तथा मूल्यांकन और पहचान की क्षमता का विकास करे। सुनने के क्रम में, इसी प्रकार गतिविधियों की योजना तैयार कर पाठ्यपुस्तकों और मार्गदर्शिकाओं में उनका समावेश कर महत्वपूर्ण कौशलों और मूल्यों के विकास में काफी कुछ किया जा सकता है। इसके अंतर्गत ध्यान देने की क्षमता, अन्य व्यक्तियों की बात को महत्व देना और जो बोला गया उसका अर्थ-निर्धारण, मुक्त अभिव्यक्ति और कही गई बात पर लचीली परिकल्पना शामिल हैं। ठीक इसी प्रकार, बातचीत की तरह सुनना भी कई जटिल कौशलों का जाल है। स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों में लोककथाएँ और कहानी सुनाना, सामुदायिक गायन और नाटक आते हैं। कहानी सुनाना न केवल शाला-पूर्व शिक्षा के लिए आवश्यक है, बल्कि वह बाद में भी महत्वपूर्ण बना रहता है। कथात्मक विमर्श होने के कारण, मौखिक रूप से कही गई कहानियाँ तार्किक समझ का आधार तैयार करती हैं, साथ ही, ये हमारी कल्पनाशीलता को समृद्ध बनाती हैं और अपने जीवन से अलग परिस्थितियों में भागीदारी की क्षमता का विकास भी करती हैं। कल्पनाशीलता और रहस्यात्मकता का बच्चे के विकास में बड़ा योगदान होता है। भाषा शिक्षण के एक पहलू के रूप में सुनने की कला का भी विकास संगीत की मदद से किया जाना चाहिए, जिसमें लोक, शास्त्रीय और लोकप्रिय सभी रचनाएँ शामिल हों। लोकगीतों और संगीत को भाषा की पाठ्यपुस्तकों में भी स्थान मिलना चाहिए तथा उनको अभ्यास और गतिविधियों की मदद से विकसित किया जाना चाहिए।

जबकि पठन को भाषा शिक्षण का महत्वपूर्ण अवयव माना जाता है, स्कूली पाठ्यक्रम सूचनाओं और रटंत पाठों से इतने भरे होते हैं कि सिर्फ पढ़ने के लिए पढ़ने का आनंद कहीं दूर छूट ही जाता है। पढ़ने की संस्कृति के विकास के क्रम में वैयक्तिक पठन को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है, और शिक्षकों को इस संस्कृति का हिस्सा बनकर स्वयं उदाहरण पेश करना चाहिए। इसके लिए स्कूल और सामुदायिक स्तर पर पुस्तकालयों को बढ़ावा देने की ज़रूरत है। यह मान्यता कि कथा-उपन्यास पढ़ना समय नष्ट करना है पठन को हतोत्साहित करने का बड़ा कारण है। सभी स्कूली विषयों और स्कूल के सभी स्तरों पर पूरक पठन सामग्री का विकास और उनकी आपूर्ति की तत्काल आवश्यकता है। इस प्रकार की काफी सामग्री, बाजार में उपलब्ध है यद्यपि उनकी गुणवत्ता में काफी अंतर है, परन्तु उनका कक्षा में पठन-पाठन के दौरान उपयोग किया जा सकता है। कक्षा में व्यवस्थित रूप से ऐसी सामग्री का उपयोग किया जाए तो विषयों के शिक्षण में विस्तार होगा। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों को ऐसी सामग्री से परिचित कराए जाने की आवश्यकता है और उन्हें ऐसे मानदंड बताए जाने की ज़रूरत है ताकि वे प्रभावी ढंग से पठन सामग्री का चुनाव और उपयोग कर सकें।

लिखने का महत्व सर्वविदित है, लेकिन पाठ्यचर्या में इसको लेकर नवाचार अपनाने की ज़रूरत है। शिक्षकों का ज़ोर इस पर होता है कि

बच्चे सही तरीके से लिखें। लिखने के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता। ठीक जैसे समय से पहले सही उच्चारण का बोझ, बच्चे के खुलकर अपनी बोली में बात करने की क्षमता को कुण्ठित करता है, उसी तरह मशीनी रूप से शुद्ध लिखने की मांग विचारों को अभिव्यक्त करने में बाधा बनती है। शिक्षकों को इस रूप में प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है कि वे लेखन को एक कला की तरह समझें, न कि कार्यालयी कौशल की तरह। आरंभिक वर्षों में, लिखने की क्षमता का विकास, बोलने, सुनने और पढ़ने की क्षमता की संगति में होना चाहिए। स्कूल में माध्यमिक और उच्चतर स्तर पर नोट तैयार करने को कौशल विकास के प्रशिक्षण के तौर पर देखा जाना चाहिए। आगे चलकर इससे श्यामपट्ट, पाठ्यपुस्तकों और कुंजी से टीपने की प्रवृत्ति हतोत्साहित होगी। ऐसे प्रयास भी आवश्यक हैं जिनसे पत्र-लेखन और निबंध लेखन की घिसी-पिटी गतिविधियों पर रोक लगाकर शिक्षा में कल्पना और मौलिकता को महत्वपूर्ण भूमिका दी जाए।

3.2 गणित

गणित की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चे की गणितीकरण की क्षमताओं का विकास करना है। स्कूली गणित का सीमित लक्ष्य है 'लाभप्रद' क्षमताओं का विकास, विशेषकर अंक ज्ञान-संख्या से जुड़ी क्षमताएँ, सांख्यिक संक्रियाएँ, माप, दशमलव व प्रतिशत। इससे उच्च लक्ष्य है बच्चे के साधनों को विकसित करना ताकि वह गणितीय ढंग से सोच सके व तर्क कर सके, मान्यताओं के तार्किक परिणाम निकाल सके और अमूर्त को समझ सके। इसके अंतर्गत चीजों को करने और समस्याओं को सूत्रबद्ध करने व उनका हल ढूँढ़ने की क्षमता का विकास करना आता है।

इसके लिए ऐसी पाठ्यचर्या चाहिए जो महत्वाकांक्षी हो, सुसंगत हो और गणित के महत्वपूर्ण सिद्धांतों को पढ़ाए। उसे महत्वाकांक्षी इस अर्थ में होना चाहिए कि वह उपरोक्त उच्च लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करे न कि केवल सीमित लक्ष्य की प्राप्ति का। इसे सुसंगत होना चाहिए ताकि टुकड़े-टुकड़े में उपलब्ध विभिन्न प्रणालियाँ व शिक्षा (अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित में) एक ऐसी क्षमता में ढल सकें जो माध्यमिक कक्षाओं में आने वाले विज्ञान व सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र की समस्याओं को भी संबोधित कर सके। यह इस अर्थ में महत्वपूर्ण होना चाहिए कि विद्यार्थी ऐसी समस्याओं को हल करने की आवश्यकता को महसूस करें और शिक्षक व विद्यार्थी दोनों ऐसी समस्याओं को हल करने में जो अपना समय और ऊर्जा लगाएँ उसे सदुपयोग मानें। गणित की पाठ्यचर्या के दो मुख्य सरोकार हैं— गणित शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थी के दिमाग को आकर्षित करने के लिए क्या कर सकती है, और यह विद्यार्थी के संसाधनों को कैसे सुदृढ़ कर सकती है?

चूँकि गणित माध्यमिक स्कूल तक एक अनिवार्य विषय है, अतः अच्छी गणित शिक्षा का अधिकार प्रत्येक बच्चे को है। यह शिक्षा सुखकर व सहज होनी चाहिए। शिक्षा के भूमंडलीकरण के संदर्भ में, सबसे पहला प्रश्न उठता है, आठ सालों की स्कूली शिक्षा के दौरान बच्चे को कैसा गणित पढ़ाना चाहिए जो उसे केवल उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए ही तैयार न करे बल्कि जीवनभर उसके काम आए। प्राथमिक स्कूल में सिखाए जाने वाले गणित के अधिकतर कौशल उपयोगी होते हैं। बहरहाल, पूर्ववर्णित 'उच्चतर लक्ष्यों' की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या के पुनःअभिमुखीकरण से बच्चे उस समय का बेहतर उपयोग कर सकेंगे जो वे स्कूल में व्यतीत करते हैं। उनकी समस्या हल करने व विश्लेषण करने का कौशल पुष्ट होगा और जीवन में वे विभिन्न तरह की समस्याओं का बेहतर रूप से सामना कर सकेंगे। साथ ही गणित की पाठ्यचर्या

के लंबे-चौड़े आकार (जिसमें एक विषय में दक्षता दूसरे के ज्ञान के लिए आवश्यक होती है) पर दिए जाने वाले ज़ोर को कम करना चाहिए, ताकि एक वृहत्तर पाठ्यचर्या तैयार हो पाए, जिसमें वे विषय ज्यादा हों जो बुनियादी बातों से शुरू होते हैं। यह विभिन्न विद्यार्थियों की ज़रूरतों को बेहतर ढंग से पूरा कर पाएँगे।

स्कूली गणित शिक्षा की कुछ समस्याएँ

1 बहुत से बच्चे गणित से डरते हैं और इस विषय में असफलता से भयभीत रहते हैं। वे जल्दी ही गणित की गंभीर पढ़ाई से विमुख हो जाते हैं।

2 यह पाठ्यचर्या केवल इससे विमुख होने वालों के लिए ही निराशाजनक नहीं है बल्कि यह प्रतिभाशाली बच्चों के लिए भी कोई चुनौती नहीं पेश करती।

3 समस्याएँ, अभ्यास व मूल्यांकन पद्धति यांत्रिक हैं और दुहरावग्रस्त हैं। इसमें संगणना पर अत्यधिक ज़ोर दिया गया है। इसमें स्थानिक चिंतन जैसे गणितीय क्षेत्रों को पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया है।

4 अध्यापकों में आत्मविश्वास, व तैयारी की कमी है और उन्हें आवश्यक मदद भी नहीं मिल पाती।

3.2.1 स्कूली गणित का दर्शन

- बच्चे गणित से भयभीत होने की बजाए उसका आनंद उठाएँ।
- बच्चे महत्वपूर्ण गणित सीखें; गणित में सूत्रों व यांत्रिक प्रक्रियाओं से आगे भी बहुत कुछ है।
- बच्चे गणित को ऐसा विषय मानें जिस पर वे बात कर सकते हैं, जिससे संप्रेषण हो सकता है, आपस में जिस पर चर्चा कर सकते हैं और जिस पर साथ-साथ काम कर सकते हैं।
- बच्चे सार्थक समस्याएँ उठाएँ और उन्हें हल करें।
- बच्चे अमूर्त का प्रयोग संबंधों को समझने, संरचनाओं को देख पाने और चीजों का विवेचन करने, कथनों की सत्यता या असत्यता को लेकर तर्क करने में कर पाएँ।
- बच्चे गणित की मूल संरचना को समझेंः अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित त्रिकोणमिति। स्कूली गणित के सभी मूल तत्व अमूर्त की प्रणाली, संघटन और सामान्यीकरण के लिए पद्धति मुहैया कराते हैं।
- अध्यापक कक्षा में प्रत्येक बच्चे के साथ इस विश्वास के आधार पर काम करे कि प्रत्येक बच्चा गणित सीख सकता है।

समस्या के समाधान की अनेक सामान्य युक्तियाँ स्कूल की विभिन्न अवस्थाओं में सिखाई जा सकती है : अमूर्तता, परिमाणन, सादृश्यता, स्थिति विश्लेषण, समस्या को सरल रूप में बदलना, अनुमान लगाना व उसकी पुष्टि करना - ये समस्या समाधान के अनेक संदर्भों में उपयोगी हैं। जब बच्चे ये विभिन्न युक्तियाँ सीख लेते हैं तो उनके संसाधन समृद्ध हो जाते हैं और वे यह भी सीखते हैं कि कौन सी युक्ति सर्वश्रेष्ठ है। बच्चों को गणित के अन्वेषणात्मक नियमों से परिचय की भी आवश्यकता होती है न

प्रत्यक्षीकरण प्रमाण

क्यों $3\times5=5\times3$?

पाँच के तीन समूह *तीन के पाँच समूह*

कि केवल इस विश्वास की कि गणित एक 'सटीक विज्ञान' है। परिमाण और हलों का अनुमान भी एक आवश्यक कौशल है। जब एक किसान किसी फसल का अनुमान लगाता है तो अनुमान लगाने के कौशल, जैसे सन्निकटता और इष्टीकरण के कौशलों का उपयोग होता है। स्कूली गणित की इस तरह की उपयोगी बातें सिखाने और उनके परिष्कार में महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रत्यक्षीकरण और निरूपण ऐसे कौशल हैं जिनको विकसित करने में गणित सहायक हो सकता है। परिमाण, आकार व रूपों का प्रयोग करके स्थितियों का प्रतिरूपण करने में गणित का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग होता है। गणितीय अवधारणाओं को कई तरीकों से निरूपित किया जा सकता है और ये निरूपण विभिन्न संदर्भों में विविध प्रयोजनों का काम करते हैं — यह सब गणित की सामर्थ्य को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए एक भिन्न को बीजगणितीय तौर पर निरूपित किया जा सकता है और एक ग्राफ के रूप में भी। अब अगर अ/ब को एक पूर्ण इकाई के एक अंश के रूप में प्रस्तुत किया गया है तो वह दो अंकों अ तथा ब के भागफल को भी इंगित कर सकता है। भिन्न खण्डों के बारे में यह सीखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि भिन्न अंशों के गणित को सीखना।

गणित व अन्य विषयों के अध्ययन के बीच संबंध बनाने की भी आवश्यकता है। जब बच्चे ग्राफ बनाना सीखते हैं तो उन्हें भू-विज्ञान सहित विभिन्न विज्ञानों के कार्यात्मक संबंधों के बारे में सोचने के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए। हमारे बच्चे इस तथ्य के मूल्य को पहचान पाएँ कि गणित, विज्ञान के अध्ययन का एक प्रभावी उपकरण है।

गणित में व्यवस्थित तार्किकता के महत्व पर और प्रबलता से ज़ोर नहीं दिया जा सकता। यह गणितज्ञों की सौष्ठव और सौंदर्य-बोध जैसी अत्यंत प्रिय धारणाओं से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। प्रमाण महत्वपूर्ण है, लेकिन निगमनात्मक (निगमन-आधारित) प्रमाण के साथ बच्चों को यह भी जानना चाहिए कि चित्र व निर्मिति प्रमाण कब प्रदान सकते हैं। प्रमाण देना एक ऐसी प्रक्रिया है जो संशय करने वाले विरोधी पक्ष को आश्वस्त करने के लिए आवश्यक है; स्कूली गणित के माध्यम से प्रमाण को व्यवस्थित तर्क-वितर्क के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तर्क विकसित करने, उसका मूल्यांकन करने, अनुमेयों के निर्माण और उनकी पड़ताल करने की क्षमताओं का विकास स्कूली गणित का लक्ष्य होना चाहिए तथा यह समझ भी होनी चाहिए कि तर्क करने के विभिन्न तरीके होते हैं।

गणितीय संप्रेषण, जो सटीक होता है उसमें सुस्पष्ट भाषा का प्रयोग एवं सख्त संरूपण होता है। ये गणित के महत्वपूर्ण लक्षण हैं। गणित में पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग सुचिंतित, सचेत और विशिष्ट शैली में होता है। गणितज्ञ इस पर विचार करते हैं कि कौन सी अंकन पद्धति उपयुक्त है क्योंकि अच्छी अंकन पद्धति को विचारों का सहायक माना जाता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं उन्हें इन प्रथाओं की महत्ता को समझना व उनका प्रयोग करना भी सिखाना चाहिए। उदाहरण के लिए, समीकरण बनाने को भी उतना ही महत्व

समस्या प्रतिपादन

- अगर आप जानते हैं कि 235+367 = 602, तो 234+369 कितने होंगे? आपने उत्तर कैसे ढूँढ़ा?
- 5384 में से कोई एक अंक बदल दीजिए। क्या संख्या बढ़ती है या घटती है? कितनी बढ़ी या घटी ?

मिलना चाहिए जितना उन्हें 'हल करने' को दिया जाता है।

ऐसे कई कौशलों और प्रक्रियाओं की चर्चा करते हुए हमने अभिगमों और क्रियाविधियों की बहुलता की बात की है। ये सभी स्कूली गणित को सिर्फ पढ़ाए गए 'कलन विधि' के इस्तेमाल की तानाशाही से मुक्त करने के लिए ज़रूरी है।

3.2.2 पाठ्यचर्या

पूर्व प्राथमिक स्तर पर सारा अधिगम खेल के ज़रिए होता है, उपदेशात्मक संप्रेषण के ज़रिए नहीं। गिनती को क्रम में रटने की बजाय बच्चों को यह सीखने और समझने की ज़रूरत है कि छोटे समुच्चयों के संदर्भ में नाम के खेल और संख्या में और गिनती एवं मात्रा में क्या जुड़ाव है। एक वक्त में एक आयाम में सरल तुलनाएँ और वर्गीकरण करना और आकार व सममितियाँ पहचानना ऐसे कौशल हैं जो इस स्तर पर सीखे जाने चाहिए। इस स्तर पर, और आगे के स्तरों पर भी बच्चों को अपने विचार व भावनाएँ खुल कर व्यक्त करने के लिए भाषा का इस्तेमाल करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए न कि पूर्वनिर्धारित तरीकों से व्यक्त करने के लिए।

प्राथमिक स्तर पर बच्चों में गणित के लिए सकारात्मक रुझान और रुचि विकसित करना भी उतना ही ज़रूरी है जितना कि ज्ञानात्मक कौशल और अवधारणाएँ सीखना। गणितीय खेल, पहेलियां और कहानियाँ सकारात्मक रुझान पैदा करने और गणित को रोज़मर्रा की जिंदगी से संबंध जोड़ने में मददगार हो सकती हैं। यह खयाल रखना ज़रूरी है कि गणित सिर्फ अंकगणित नहीं है। संख्याओं और उनके उपयोग के अलावा आकारों, शैक्षिक समझ, प्रतिरूपों, मापों और आंकड़ों की समझ को भी महत्व देना चाहिए। पाठ्यचर्या में स्पष्टतः सीखने वाले की प्रगति की क्रमिकता को शामिल किया जाना चाहिए जो अवधारणाओं को समझ कर मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाती है। गणनात्मक कौशल के अलावा पैटर्न्स को पहचानने, अभिव्यक्त करने और समझाने पर, या समस्याओं के हल में आकलन करने और अनुमान का इस्तेमाल करने, संबंध पहचानने और संप्रेषण व तर्क की दृष्टि से भाषागत कौशल का विकास करने पर ज़ोर दिया जाए।

उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों को गणित की शक्ति का एहसास तब होता है जब वे उन शक्तिशाली अमूर्त अवधारणाओं का इस्तेमाल करते हैं जो पिछली पढ़ाई और अनुभव को संघटित कर देती हैं। इससे उन्हें प्राथमिक स्कूल में सीखी हुई बुनियादी अवधारणाओं और कौशल की ओर फिर से ध्यान देने और उन्हें मजबूत करने में मदद मिलती है जो कि सार्वजनीन गणितीय साक्षरता की दृष्टि से ज़रूरी है। विद्यार्थी बीजगणितीय संकेतों से परिचित होते हैं और स्थान और आकारों की समस्याएँ हल करने और सामान्यीकरण में उनका उपयोग करना सीखते हैं और उनका माप संबंधी ज्ञान पुख्ता होता है। एक अत्यावश्यक जीवन कौशल है सामान्य सूचनाओं का उपयोग करना। इसमें आंकड़ों का उपयोग, आंकड़ों में प्रस्तुति व उनकी व्याख्या शामिल है। इस स्तर का अधिगम विद्यार्थियों की द्विआयामी व त्रिआयामी समझ तथा कल्पना कौशलों को समृद्ध बनाने का भी अवसर प्रदान करता है।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी गणित की संरचना को एक अनुशासन की तरह देखना प्रारम्भ कर देते हैं। वह गणितीय संप्रेषण की मुख्य विशिष्टताओं से परिचित होते हैं, सावधानीपूर्वक परिभाषित पारिभाषिक शब्द और अवधारणाएँ, उन्हें जताने के लिए प्रयुक्त संकेतों का इस्तेमाल, ठीक रूप से अभिव्यक्त पूर्व सर्ग और उन्हें सिद्ध करने के लिए प्रमाण — खासकर रेखागणित के क्षेत्र में ये पहलू स्पष्ट होते हैं। बीजगणित में विद्यार्थी अपनी कुशलता

बढ़ाते हैं जो सिर्फ गणित के प्रयोग के लिए महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि उनसे स्वयं गणित के प्रमाण और औचित्य भी मिलते हैं। इस स्तर पर विद्यार्थी सीखी हुई कई अवधारणाओं और कौशल को समस्या सुलझाने की योग्यता में संजोते हैं। गणितीय मॉडलिंग, आंकड़ों का विश्लेषण आदि जो इस स्तर पर पढ़ाए जाते हैं, एक उच्चस्तरीय गणितीय साक्षरता में बदल सकते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर या समूहों में जुड़ाव, दृश्य रचना, सामान्यीकरण की तलाश, अनुमान लगाना और उन्हें सिद्ध करना आदि इस स्तर पर महत्वपूर्ण हैं। उचित उपकरणों, जिसमें ठोस मॉडल्स भी आते हैं जैसे कि गणित प्रयोगशालाओं में पाए जाते हैं तथा कंप्यूटरों के ज़रिए इन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर गणित की पाठ्यचर्या का उद्देश्य विद्यार्थियों में गणित के उपयोग के विस्तृत फलक की पहचान और उन बुनियादी औजारों की समझ विकसित करना है जो उस उपयोग को संभव बनाते हैं। यहाँ गहराई और विस्तार की अक्सर परस्पर-विरोधी माँगों के बीच सावधानी से चुनाव करना ज़रूरी है। एक अनुशासन की तरह गणित के तेजी से विस्तार और उसके उपयोगों का फैलता फलक अधिक व्यापकता की माँग करता है। ऐसे विस्तार के लिए विषयों को उनके गणितीय महत्व से आंका जाना चाहिए। जो विषय दूसरे अनुशासनों के ज्यादा स्वाभाविक हिस्से हैं उन्हें गणित की पाठ्यचर्या से बाहर रखा जाए। विषयों के निरूपण का एक उद्देश्य गणितीय अंतर्दृष्टि और अवधारणाओं को विकसित करना होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में स्वभाविक रूप से रुचि और लगाव जागता रहे।

3.2.3 कंप्यूटर विज्ञान

आधुनिक समाज को गढ़ने में कंप्यूटर और कंप्यूटिंग टैक्नोलॉजी का जो जबर्दस्त प्रभाव है, उससे इस प्रकार की शिक्षित जनता की ज़रूरत पैदा हो गई है जो समाज और मनुष्य जाति की बेहतरी के लिए ऐसी प्रौद्योगिकी का प्रभावी इस्तेमाल कर सके। इसलिए इस बात को समझा जा रहा है कि ज्ञान के इन क्षेत्रों को स्कूली पाठ्यचर्या में जगह मिलनी चाहिए।

सूचना प्रौद्योगिकी (आई टी) पाठ्यचर्या, जिसमें सूचना और कंप्यूटर युग के औज़ारों का उपयोग शामिल है और कंप्यूटर विज्ञान पाठ्यचर्या जिसमें ये औज़ार रचे और गढ़े जाते हैं, इन दोनों के बीच फ़र्क करना ज़रूरी है। इन दोनों की ही स्कूली शिक्षा में जगह है।

हालांकि कई देशों ने कंप्यूटर विज्ञान या सूचना प्रौद्योगिकी पाठ्यचर्या अपने स्कूलों में लागू किए हैं, लेकिन हमें उन चुनौतियों का खयाल रखना होगा जो भारतीय स्कूली विद्यार्थियों के सामने हैं। पहली चुनौती कंप्यूटर विज्ञान के लिए तकनीकी संसाधनों की कमी की है। संसाधनों के अभाव में 'कंप्यूटर विज्ञान' पढ़ाना (कंप्यूटर-उपयोग की तो बात रहने दें) निरर्थक है। सभी विद्यार्थियों के लिए कंप्यूटर और उसकी संयोजकता उपलब्ध कराना एक बड़ी तकनीकी व आर्थिक चुनौती है। लेकिन कंप्यूटर प्रौद्योगिकियों का बढ़ता प्रभाव देखते हुए हमें इस बुनियादी चुनौती को गंभीरता से लेना होगा और हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और संयोजकता की तकनीकी के मामले में ऐसे व्यावहारिक और कल्पनाशील विकल्प ढूँढ़ने होंगे जो भारतीय शहरी और ग्रामीण स्कूलों के लिए उपयोगी हों।

हमें कंप्यूटर विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी में एक समग्र और सुसंगत पाठ्यचर्या मॉडल को विकसित करने के मुद्दे को भी हल करना होगा। ऐसा मॉडल जो शिक्षा से जुड़े लोगों, प्रशासकों और आम जनता के बीच संवाद का आधार बन सके। कुछ बुनियादी तत्व कई कंप्यूटर विज्ञान व सूचना प्रौद्योगिकी पाठ्यचर्याओं में एकसमान होते हैं और वे भारतीय स्कूलों में भी लागू हो सकते हैं। पुनरावृत्तीय प्रक्रियाओं और कलन विधि की

अवधारणाएँ, परिकलन से निकलने वाली आम समस्या समाधान की पद्धतियाँ, कंप्यूटर के उपयोग की संभावनाएँ, आधुनिक संसार में कंप्यूटर की जगह और उससे उठने वाले सामाजिक मुद्दे – ये सभी उन बुनियादी तत्वों में शामिल हैं।

3.3 विज्ञान

प्रकृति के अद्‌भुत एवं विस्मयकारी पहलुओं के प्रति मनुष्य की आरंभिक समय से प्रतिक्रिया रही है, प्रकृति के जैविक एवं भौगोलिक वातावरण का ध्यानपूर्वक अवलोकन, सार्थक प्रतिमानों और संबंधों की खोज, प्रकृति के साथ अंतःक्रिया के लिए नए उपकरणों का निर्माण एवं उपयोग तथा विश्व को समझने के लिए अवधारणात्मक मॉडल्स की रचना। इसी मानवीय उद्यम से आधुनिक विज्ञान का विकास हुआ। मोटे तौर पर कहें, तो वैज्ञानिक पद्धति में कई अंतःसंबद्ध चरण शामिल होते हैं: अवलोकन, बारंबारता और प्रतिमानों की तलाश, प्राक्कल्पना करना, गुणात्मक व गणितीय मॉडल बनाना, अवलोकनों तथा नियंत्रित प्रयोगों द्वारा सिद्धांतों को वैध या गलत साबित करना और प्रयोगों के परिणामों का निगमन करना तथा इनके माध्यम से ऐसे सिद्धांतों, नियमों तक पहुँचना जिनसे प्राकृतिक जगत संचालित होता है। विज्ञान के नियमों को कभी स्थिर सार्वभौमिक सत्य की तरह नहीं देखा जाता। यहाँ तक कि विज्ञान के सार्वभौम और स्थापित समझे जाने वाले सत्यों को भी अन्तरिम ही माना जाता है। नए प्रयोगों और विश्लेषण के आधार पर उनमें बदलाव भी हो सकता है।

विज्ञान गत्यात्मक और निरंतर परिवर्धित ज्ञान का भंडार है जिसमें अनुभव के नए-नए क्षेत्रों को शामिल किया जाता है। एक प्रगतिशील और भविष्योन्मुखी समाज में विज्ञान सचमुच मुक्तिदायी भूमिका निभा सकता है, इसके सहयोग से लोगों को गरीबी, अज्ञान और अंधविश्वास के दुष्चक्र से

प्रश्न पूछना

''वायु हर जगह है'' यह प्रत्येक स्कूली बच्चा सीखता है। संभवतः विद्यार्थी यह भी जानते हैं कि पृथ्वी के वातावरण में कई गैसें हैं, या यह कि चंद्रमा पर हवा नहीं है। हम खुश हो सकते हैं कि वह थोड़ा विज्ञान तो जानते हैं लेकिन इस बातचीत पर ध्यान दें जो चौथी कक्षा में शिक्षिका व विद्यार्थियों के बीच हुई।

शिक्षिका : ''क्या इस गिलास में हवा है?''
विद्यार्थी (मिलकर) : हाँ!

वह शिक्षिका इस सामान्य कथन से संतुष्ट नहीं थी कि ''हवा हर जगह है'' उसने विद्यार्थियों से इस विचार को एक सरल सी स्थिति पर लागू करने के लिए कहा और अचानक उसने पाया कि उन्होंने कुछ वैकल्पिक अवधारणाएँ तैयार की थीं।

शिक्षिका : अब गिलास को उलटा रख दें। क्या अब भी इसमें हवा है ?

(कुछ विद्यार्थियों ने कहा ''हाँ'', कुछ ने ''नहीं'' और कुछ दुविधा में रहे।)

विद्यार्थी 1 : हवा गिलास के बाहर आ गई!

विद्यार्थी 2 : गिलास में हवा थी ही नहीं।

दूसरी कक्षा में एक शिक्षिका ने जलती मोमबत्ती के ऊपर एक खाली गिलास रखा था और मोमबत्ती बुझ गई थी।

विद्यार्थियों ने एक ऐसी क्रिया की थी जो उनकी स्मृति में दो वर्ष बाद भी स्पष्ट थी लेकिन कम से कम कुछ ने तो इसका गलत निष्कर्ष निकाला था।

कुछ समझाने के बाद शिक्षिका ने फिर विद्यार्थियों से सवाल किए। क्या इस बंद अलमारी में हवा है? क्या मिट्टी में हवा है? पानी में? हमारे शरीर के भीतर? हमारी हड्डियों के अंदर? प्रत्येक सवाल नए विचार लेकर आया और उससे कुछ गलतफहमियाँ दूर हो गईं। यह पाठ कक्षा के लिए भी एक संदेश था : किसी भी कथन को विश्लेषण के बिना स्वीकार न करो। सवाल पूछें। हो सकता है सभी उत्तर न मिलें लेकिन आप इससे अधिक सीखेंगे।

निकाला जा सकता है। विज्ञान और तकनीकी के विकास ने कृषि और उद्योग के परंपरागत स्वरूप को बिलकुल बदल दिया है। आज का मनुष्य तेज़ी से परिवर्तनशील समाज का हिस्सा है जिसमें लचीलापन, नवाचार और रचनात्मकता प्रमुख कौशल समझे जाते हैं। विज्ञान शिक्षा का स्वरूप तय करते हुए इन विविध पहलुओं को ध्यान में रखने की ज़रूरत है। अच्छी विज्ञान शिक्षा बच्चे, जीवन व विज्ञान के प्रति ईमानदार होती है। यह सरल निष्कर्ष विज्ञान पाठ्यचर्या के निम्नलिखित वैध मानकों की ओर इंगित करता है :

1. संज्ञानात्मक वैधता के लिए आवश्यक है कि पाठ्यचर्या की विषयवस्तु, प्रक्रिया, भाषा व शिक्षा-शास्त्रीय अभ्यास आयु के अनुरूप हों और बच्चे की संज्ञानात्मक पहुँच के भीतर आएँ।
2. संज्ञानात्मक वैधता के लिए आवश्यक है कि पाठ्यचर्या बच्चों तक महत्वपूर्ण व वैज्ञानिक विषयवस्तु पहुँचाए। बच्चों के संज्ञानात्मक स्तर तक पहुँचने के लिए अंतर्वस्तु को सरल तो किया जाए लेकिन उसे इतना हलका नहीं बनाया जाए कि मूल जानकारी या तो गलत या निरर्थक हो जाए।
3. प्रक्रिया की वैधता के अंतर्गत आवश्यकता है कि पाठ्यचर्या विद्यार्थी को उन प्रणालियों व प्रक्रियाओं को अर्जित करने में व्यस्त रखे जो उसे वैज्ञानिक जानकारी के पुष्टिकरण व सृजन करने की ओर बढ़ाएँ तथा विज्ञान में बच्चे की स्वाभाविक जिज्ञासा एवं सृजनशीलता का पोषण हो सके। प्रक्रिया की वैधता एक बेहद महत्वपूर्ण कसौटी है क्योंकि इससे विद्यार्थी को 'विज्ञान किस तरह सीखा जाए' यह सीखने में सहायता मिलती है।
4. ऐतिहासिक वैधता में आवश्यकता है कि विज्ञान की पाठ्यचर्या एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ जानकारी दे ताकि विद्यार्थी यह समझ सकें कि समय के

विद्यार्थी कौन सा जीव विज्ञान जानते हैं?

''ये विद्यार्थी विज्ञान नहीं समझते, ये वंचित पृष्ठभूमि से हैं!'' अक्सर ग्रामीण व आदिवासी पृष्ठभूमि से आए बच्चों के बारे में हम इस प्रकार के मत सुनते हैं। फिर भी देखें कि ये बच्चे अपने दैनिक अनुभवों से क्या-क्या जानते हैं।

जनाबाई सहयाद्रि पर्वत शृंखला में स्थित एक छोटे से गाँव में रहती है। वह चावल व अरहर की खेतों में अपने माता पिता की मदद करती है। कभी-कभी वह अपने भाई के साथ बकरियों को चराने भी ले जाती है। उसने अपनी छोटी बहन के पालन-पोषण में भी मदद की है। आजकल वह हर रोज आठ किलोमीटर पैदल चल कर निकट के माध्यमिक स्कूल में जाती है।

उसका अपने प्राकृतिक वातारण से घनिष्ठ संबंध है। उसने अनेक पौधों का भोजन, दवाई, ईंधन, रँगने के पदार्थ के रूप में काम में लिए है। उसने तरह-तरह के पौधों के विभिन्न अंगों का अवलोकन किया है जो घर में धार्मिक अनुष्ठानों एवं त्योहार मनाने के दौरान काम में लिए जाते हैं। वह वृक्षों के सूक्ष्मतम अंतर को जानती है और आकार, पत्तियों, फूलों, सुगंध व बनावट के आधार पर मौसमी बदलाव को जान लेती है। वह अपने आसपास के लगभग सौ वृक्षों को पहचान सकती है जो उसके जीव विज्ञान के अध्यापक की जानकारी से कहीं अधिक है - वही अध्यापक जो यह मानता है कि जनाबाई एक कमज़ोर विद्यार्थी है।

क्या हम जनाबाई की ऐसी मदद कर सकते हैं ताकि वह अपनी समृद्ध समझ को जीव विज्ञान की औपचारिक अवधारणाओं में बदल सके? क्या हम उसे यह भरोसा दिला सकते हैं कि स्कूल का जीव विज्ञान किसी अमूर्त दुनिया के बारे में जानकारी नहीं देता है जो कठिन भाषा व लम्बे-चौड़े पाठों में निहित है? यह उसी खेत के बारे में है जिसमें वह काम करती है, उन जानवरों के बारे में, जिन्हें वह जानती है और जिनकी देखभाल करती है, उस जंगल के बारे में जिसमें से वह रोज गुजरती है। केवल तभी वह वाकई विज्ञान को समझ पाएगी।

साथ-साथ विज्ञान की अवधारणाएँ कैसे विकसित हुईं। इससे विद्यार्थी को यह समझने में भी मदद मिलेगी कि विज्ञान एक सामाजिक उद्यम है और सामाजिक घटक किस प्रकार विज्ञान के विकास को प्रभावित करते हैं।

5. पर्यावरण संबंधी वैधता के लिए आवश्यक है कि विज्ञान को विद्यार्थियों के स्थानीय व वैश्विक दोनों के वृहद पर्यावरण के संदर्भ में रखा जाए ताकि वह विज्ञान, तकनीक व समाज के पारस्परिक संवाद के क्रम में मुद्दों को समझ सके और उन्हें कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए आवश्यक ज्ञान व कौशल दे सके।
6. नैतिक वैधता के लिए ज़रूरी है कि पाठ्यचर्या ईमानदारी, वस्तुपरकता, सहयोग, भय व पूर्वग्रह से आज़ादी जैसे मूल्यों को प्रोत्साहित करे और विद्यार्थी में पर्यावरण व जीवन के संरक्षण के प्रति चेतना को विकसित करे।

3.3.1 विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या

उपरोक्त मानदंड के हिसाब से पाठ्यचर्या के विभिन्न स्तरों पर उद्देश्य, विषयवस्तु, शिक्षाशास्त्र व मूल्यांकन निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिए :

प्राथमिक अवस्था में बच्चे की व्यस्तता अपने चारों ओर की दुनिया की नयी-नयी चीजें खोजने का आनंद उठाने और उनके साथ सामंजस्य बैठाने में होनी चाहिए। इस अवस्था में उद्देश्य यह होना चाहिए कि बच्चे में चारों ओर की दुनिया के प्रति जिज्ञासा को पोषण मिले (प्राकृतिक पर्यावरण, चीजों व लोगों के प्रति); बच्चे को ऐसी गतिविधियों में व्यस्त रखना ताकि वह सूक्ष्म अवलोकन, वर्गीकरण व स्वयं करने वाली गतिविधियों इत्यादि से मूल ज्ञानात्मक कौशल हासिल कर सके; डिज़ाइन व निर्माण, अनुमान व मापन पर ज़ोर देना ताकि वह बाद के स्तरों पर तकनीकी एवं संख्यात्मक कौशल प्राप्त कर सके; और मूल भाषिक दक्षता विकसित करना; जैसे – बोलना, पढ़ना और लिखना केवल विज्ञान के लिए ही नहीं बल्कि विज्ञान के माध्यम से भी। विज्ञान व सामाजिक विज्ञान को 'पर्यावरण अध्ययन' में समाहित करना चाहिए जिसमें स्वास्थ्य भी एक महत्त्वपूर्ण अंग हो। प्राथमिक अवस्था में नियमित रूप से कोई परीक्षा नहीं होनी चाहिए न ही अंक अथवा श्रेणी मिलनी चाहिए और न ही किसी को फेल करना चाहिए।

उच्च प्राथमिक अवस्था में बच्चे के प्रमुख कार्य परिचित अनुभवों द्वारा विज्ञान के सिद्धांत सीखना, हाथों से सरल तकनीकी इकाइयाँ या मॉडल बनाना (उदाहरण के लिए, वज़न उठाने के लिए पवनचक्की के कार्यकारी प्रतिरूप की रचना) और पर्यावरण व स्वास्थ्य जिसके अंतर्गत प्रजनन एवं यौन स्वास्थ्य भी आता है, के बारे में और अधिक जानकारी हासिल करना होने चाहिए। वैज्ञानिक अवधारणाओं को मुख्यतः गतिविधियों व प्रयोगों द्वारा ही समझाना चाहिए। इस अवस्था में विज्ञान की अंतर्वस्तु को माध्यमिक स्कूल के विज्ञान का सरलीकृत संस्करण नहीं समझना चाहिए। सामूहिक क्रियाकलाप, दोस्तों व अध्यापकों के साथ विमर्श, सर्वेक्षण, आँकड़ों का नियोजन और स्कूल तथा आस-पड़ोस के क्षेत्र में प्रदर्शनियों द्वारा इसका प्रदर्शन शिक्षण प्रणाली के महत्त्वपूर्ण अंग होने चाहिए। निरंतर व नियमित 'आकलन' होना चाहिए (इकाई परीक्षा व सत्र अंत की परीक्षा)। 'प्रत्यक्ष' ग्रेड्स की व्यवस्था अपनाई जानी चाहिए और फेल नहीं करना चाहिए। हर बच्चा जो स्कूल में आठ साल व्यतीत करता है उसे नवीं श्रेणी में प्रवेश पाने के योग्य मानना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को विज्ञान की शिक्षा एक संयुक्त विषय के रूप में दी जानी चाहिए, जिसमें उच्च प्राथमिक स्तर से अधिक उन्नत तकनीकी की शिक्षा शामिल हो तथा स्वास्थ्य, जिसमें प्रजनन एवं यौन स्वास्थ्य भी आता है, और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों से संबंधी गतिविधियाँ और

विश्लेषण को उनमें शामिल किया जाना चाहिए। सैद्धांतिक आधारों को तलाशने/जाँचने के लिए व्यवस्थित प्रयोग तथा विज्ञान और तकनीकी से संबंधित स्थानीय महत्त्व की परियोजनाओं को पाठ्यचर्या के महत्त्वपूर्ण हिस्से के रूप में शामिल करना चाहिए।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विज्ञान को अलग-अलग विषयों के रूप में लाना चाहिए जिसमें प्रयोगों/तकनीक तथा समस्या हल करने की प्रक्रिया पर बल दिया गया हो। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अब तक मौजूदा दो धाराओंः अकादमिक व व्यावसायिक, जिनका पालन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के तहत किया जा रहा है, पर पुनर्विचार की ज़रूरत हो सकती है। विद्यार्थियों को अपनी अभिरुचि के विकल्प चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, हालाँकि प्रत्येक स्कूल में सभी विषयों का उपलब्ध होना संभव नहीं होता। माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक के बीच के गहरे अंतर को हटाने के लिए पाठ्यचर्या के बोझ को तर्कसंगत होना चाहिए। इस स्तर पर, विषय के मुख्य पाठों की, क्षेत्र में हुई वर्तमान प्रगति को ध्यान में रखते हुए, सावधानीपूर्वक पहचान की जानी चाहिए। उन्हें उपयुक्त सख्ती तथा गहराई से शामिल किया जाना चाहिए। ढेरों विषयों की सतही जानकारी देने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

3.3.2 दृष्टिकोण

भारत में विज्ञान की शिक्षा के जटिल परिदृश्य को देखें तो तीन मुख्य मुद्दे नज़र आते हैं। पहला, विज्ञान शिक्षा आज भी हमारे संविधान में निहित समता के उद्देश्य की प्राप्ति से बहुत दूर है। दूसरा, भारत में विज्ञान की अच्छी से अच्छी शिक्षा भी, दक्षता तो विकसित करती है किंतु रचनात्मकता व अन्वेषण को प्रेरित नहीं करती। तीसरा, भारत में विज्ञान शिक्षा की अधिकतर मूलभूत समस्याओं का आधार है परीक्षा की बोझिल व्यवस्था।

विज्ञान की पाठ्यचर्या का उपयोग सामाजिक बदलाव लाने के उपकरण के रूप में करना चाहिए ताकि आर्थिक, वर्ग, लिंग, जाति, धर्म व क्षेत्र आधारित अंतर कम हो सकें। हमें समता का भाव लाने के एक प्राथमिक माध्यम के रूप में पाठ्यपुस्तकों का प्रयोग करना ही होगा। ज़्यादातर स्कूली विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भी यही शिक्षा का एकमात्र सुलभ साधन है जो आर्थिक रूप से उनकी पहुँच में होता है। हमें देश में वैकल्पिक पाठ्यपुस्तक लेखन को प्रोत्साहित करना चाहिए जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के वृहद मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुरूप लिखी जाएँ। इन पाठ्यपुस्तकों में गतिविधियों, सूक्ष्म अवलोकन, प्रयोग आदि को भी शामिल किया जाना चाहिए और विज्ञान के प्रति एक ऐसे सक्रिय रुख को बढ़ावा देना चाहिए जो बच्चे को उसके आस-पास की दुनिया से जोड़ सके और केवल सूचना-आधारित न हो। इसके साथ कार्य पुस्तिका, सहायक पाठ्य-सामग्री और विज्ञान से संबंधित लोकप्रिय किताबें उपलब्ध करवानी चाहिए। बाल विश्वकोष (एंसाइक्लोपीडिया) बच्चों को उन सूचनाओं व विचारों तक पहुँचने देगा जिनको पाठ्यपुस्तक में शामिल कर बोझ बढ़ाना आवश्यक न हो। बल्कि वह परियोजना कार्य में होने वाले अधिगम को भी समृद्ध बनाएगा। क्षेत्रीय भाषाओं में ऐसी सचित्र सामग्री की बहुत कमी है।

ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान नुक्कड़ों का विकास, वैज्ञानिक किट व प्रयोगशाला उपलब्ध कराना भी विज्ञान की पढ़ाई के लिए समान प्रावधान करने का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। सूचना एवं संचार तकनीक (आई.सी.टी.) सामाजिक खाई को पाटने का अहम औज़ार है। आई.सी.टी. का उपयोग इस प्रकार होना चाहिए कि यह सूचना, संप्रेषण व संसाधनों को दूर-दराज़ के इलाकों तक पहुँचाए और सभी जगह समान रूप से अवसर उपलब्ध कराए। यदि आईसीटी का उपयोग अध्यापकों व बच्चों द्वारा विश्वविद्यालय

व शोध संस्थानों से संपर्क करने में किया जाय तो वहाँ काम करने वाले वैज्ञानिकों व उनके कार्यों से रहस्य का पर्दा उठाने में सहायता मिलेगी।

मौजूदा विज्ञान शिक्षा की स्थिति में किसी भी तरह के गुणात्मक परिवर्तन के लिए एक निदर्शनात्मक बदलाव की ज़रूरत है। रटने को हतोत्साहित करना चाहिए। भाषा, डिजाइन व संख्यात्मक दक्षता द्वारा खोजबीन की प्रवृत्ति को सुदृढ़ करना चाहिए। स्कूलों द्वारा पाठ्य-सहगामी व पाठ्येत्तर क्रियाओं पर, आविष्कारशीलता व रचनात्मकता के माध्यम से अधिक बल दिया जाना चाहिए, भले ही ये तत्व बाहर की परीक्षा व्यवस्था का भाग न हों। इसी तर्ज पर वर्तमान में बाल विज्ञान सम्मेलन को बहुत सफलता मिली है। बाल विज्ञान कांग्रेस जैसी गतिविधियों का बड़े पैमाने पर आयोजन किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर बड़े विज्ञान एवं तकनीकी मेले, समुदाय, जिला, और राज्य स्तर पर भी आयोजित किए जा सकते हैं, जिससे स्कूल और शिक्षकों को इस आंदोलन में सहभागिता के लिए प्रेरित किया जा सके। ऐसा आंदोलन भारत के हर कोने से होकर दक्षिण एशिया तक फैलाना चाहिए ताकि युवाओं व शिक्षकों में रचनात्मकता व वैज्ञानिक प्रवृत्ति की लहर का संचार हो सके।

राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षा सुधार का आंदोलन शुरू करना चाहिए, जिसके लिए पर्याप्त धन और उच्चस्तरीय मानव संसाधन जुटाए जाएँ। यह आंदोलन शिक्षकों, शिक्षाविदों व वैज्ञानिकों को एक साझे मंच पर लेकर आए; और, विद्यार्थियों के मूल्यांकन के नए तरीके निकाले जो परीक्षा संबंधी तनाव के स्तर को घटाएँ; प्रवेश परीक्षाओं की बहुलता को नियंत्रित करें; और औपचारिक अकादमिक योग्यताओं को जाँचने की बजाए बहुआयामी सक्षमताओं को जाँचने के तरीकों पर शोध करें।

बहरहाल, इन सुधारों के लिए मूलतः शिक्षकों के सशक्तीकरण में सुधार की आवश्यकता है। कोई भी सुधार चाहे वह कितना ही सुनियोजित व प्रोत्साहक क्यों न हो तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि अध्यापक उसे व्यवहार में लाने के लिए स्वयं को समर्थ महसूस न करे। अध्यापकों की सक्रिय भागीदारी से उपरोक्त सुधारों का स्कूलों में प्रत्येक स्तर के विज्ञान शिक्षण पर ऐसा प्रभाव पड़ सकता है जो लगातार बढ़ता जाए।

3.4 सामाजिक विज्ञान

सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत समाज के विविध सरोकार आते हैं। इसकी अंतर्वस्तु बहुत विविध है जिसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मानव विज्ञान जैसे विषयों की विषयवस्तु समाहित की जाती है। सामाजिक विज्ञान की अनुभूतियाँ और ज्ञान, एक समतामूलक और शांतिमूलक समाज का ज्ञान-आधार तैयार करने की दिशा में अपरिहार्य हैं। सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु का लक्ष्य जानी-पहचानी सामाजिक सच्चाई की समीक्षात्मक जाँच तथा उस पर प्रश्न करते हुए विद्यार्थियों में आलोचनात्मक जागरूकता का संवर्धन, होना चाहिए। विद्यार्थियों के अपने जीवन-संदर्भों के संबंध में नए आयामों और नए पहलुओं को जगह दी जा सकती है। एक सार्थक पाठ्यचर्या के लिए सामग्री चयन और उनका निर्धारण, ऐसी पाठ्यचर्या जो विद्यार्थियों में समाज के प्रति आलोचनात्मक समझ का विकास करे, यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

चूँकि सामाजिक विज्ञानों को अनुपयोगी विषय समझा जाता है और उनको विज्ञान से कम महत्त्व दिया जाता है, अतः इस पर ज़ोर दिए जाने की आवश्यकता है कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक और विश्लेषणात्मक क्षमता के विकास में मदद करें जिनकी आज की परस्पर-निर्भर होती जा रही दुनिया में आवश्यकता होती है। साथ ही जिससे राजनीतिक और आर्थिक यथार्थ से जूझने में मदद मिले।

ऐसा माना जाता है कि सामाजिक विज्ञान में केवल सूचनाएँ दी जाती हैं और वे पाठ-केंद्रित

होते हैं। इसलिए विषयवस्तु में परीक्षा के लिए तथ्यों का अंबार लगाए जाने की बजाए उसकी संज्ञानात्मक समझ विकसित किए जाने की आवश्यकता है 'शिक्षा बिना बोझ के' (1993) की अनुशंसाओं को फिर से रेखांकित कर इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि अवधारणाओं की समझ और सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के विश्लेषण की क्षमता के विकास का प्रयास हो, न कि केवल बिना व्याख्या के तथ्यों के रटने पर बल हो।

ऐसी भी मान्यता है कि सामाजिक विज्ञान में विशेषज्ञता हासिल करने वालों को नौकरी के अधिक अवसर नहीं मिलते। इसके विपरीत, तेजी से बढ़ते सेवा क्षेत्र में सामाजिक विज्ञान की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है और साथ ही, विश्लेषणात्मक और रचनात्मक क्षमताओं के विकास के क्षेत्र में भी।

भारत जैसे बहुलतावादी समाज में यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रीय और सामाजिक समूह पाठ्यपुस्तकों से अपने आपको जोड़ पाएँ। प्रासंगिक स्थानीय विषय-वस्तु सीखने सिखाने की प्रक्रिया का हिस्सा होनी चाहिए, आदर्श रूप में ऐसा स्थानीय संसाधनों पर आधारित गतिविधियों के माध्यम से किया जाना चाहिए।

यह पहचानने की भी आवश्यकता है कि सामाजिक विज्ञानों में प्राकृतिक विज्ञानों और शारीरिक विज्ञानों की ही तरह वैज्ञानिक दृष्टि होती है। साथ ही यह बताए जाने की भी आवश्यकता है कि किस प्रकार सामाजिक विज्ञानों द्वारा अपनाई गई पद्धतियाँ विशिष्ट होती हैं लेकिन प्राकृतिक विज्ञान से किसी भी रूप में कमतर नहीं।

सामाजिक विज्ञान इस दायित्व का वहन करते हैं कि स्वतंत्रता, विश्वास, परस्पर सम्मान और विविधता के आदर जैसे मानवीय मूल्यों का सुदृढ़ आधार तैयार हो। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का लक्ष्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक मानसिक और नैतिक क्षमता का विकास होना चाहिए, ताकि वे उन सामाजिक शक्तियों से सावधान रह सकें जो इन मूल्यों को खतरा पहुँचाती हैं।

जिन विषयों को समाज विज्ञान के तहत माना जाता है, वे हैं इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र। उनकी अपनी विशिष्ट पद्धतियाँ होती हैं जो बहुधा सीमाएँ बाँधने को उचित ठहराती हैं। परन्तु साथ ही, विषयों की परस्परता को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए। पाठ्यचर्या को समर्थ बनाने के लिए, कुछ ऐसे विषयों को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए जिससे अंतःअनुशासनात्मक चिंतन को बढ़ावा मिले।

3.4.1 प्रस्तावित ज्ञानमीमांसात्मक ढाँचा

उपरोक्त प्रचलित धारणाओं और सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन में जिन मुद्दों को संबोधित करने की ज़रूरत है उनको ध्यान में रखते हुए सामाजिक विज्ञानों के अध्यापन को लेकर गठित राष्ट्रीय फोकस समूह ने सामाजिक विज्ञानों के संशोधित पाठ्यक्रमों के लिए कुछ बुनियादी बिंदु सुझाए हैं। पाठ्यपुस्तकें ऐसी हों जो जिज्ञासा जगाएँ, आगे अध्ययन के द्वार खोलें। विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाए कि वे अध्ययन और अवलोकन में पाठ्यपुस्तक से आगे निकलें।

जैसा कि कोठारी समिति ने ध्यान दिलाया था, सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या अब तक विकासात्मक मुद्दों पर ज़ोर देती रही है। ये महत्वपूर्ण तो हैं पर समानता, न्याय और सम्मान जैसे आदर्शों को समाज और राजनीति में समझने की दिशा में पर्याप्त नहीं कहे जा सकते। 'विकास' में व्यक्तियों की भूमिका को अक्सर बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाता है। इस विषय में एक ज्ञानमीमांसात्मक परिवर्तन सुझाया गया है, ताकि भारतीय राष्ट्र को लेकर बहुविध कल्पना को अध्ययन का हिस्सा बनाया जा सके। राष्ट्रीय दृष्टिकोण व स्थानीय दृष्टिकोण में संतुलन होना चाहिए। साथ ही, भारतीय इतिहास को अलग से न पढ़ा कर विश्व के अन्य क्षेत्रों के विकास के संदर्भ भी उसमें शामिल होने चाहिए।

यह सुझाया जाता है कि 'नागरिक शास्त्र' की जगह 'राजनीतिशास्त्र' शब्द का प्रयोग किया जाए। 'नागरिक शास्त्र' को भारतीय स्कूली पाठ्यचर्या में अंग्रेज़ी राज में सरकार के प्रति बढ़ती निष्ठाहीनता को देखते हुए शामिल किया गया था। नागरिक शास्त्र में आज्ञाकारिता और निष्ठा पर ज़ोर था। राजनीतिशास्त्र नागरिक समाज को एक ऐसे क्षेत्र के रूप में देखता है जो संवेदनशील, सवाल उठाने वाले, सोचने-विचारने वाले और बदलाव लाने वाले नागरिक बनाए।

किसी भी ऐतिहासिक और समकालीन विषय पर चर्चा के दौरान जेंडर संबंधी सरोकारों को संबोधित करना ज़रूरी है। इसके लिए सामाजिक विज्ञान में प्रचलित पितृसत्तात्मक मान्यताओं में बदलाव की ज़रूरत है।

बच्चों के स्वास्थ्य और बच्चों के विकास संबंधी बदलावों के सामाजिक पहलुओं; जैसे - माता-पिता से संबंधों में बदलाव, मित्रों, विपरीत लिंग वाले सहपाठियों और वयस्कों आदि के प्रति व्यवहारों में परिवर्तन जैसे मुद्दों को समुचित ढंग से संबोधित करने की आवश्यकता है। बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतों और किशोर/युवाओं की समस्याओं को संबोधित करने के लिए विभिन्न स्तरों पर कार्यक्रम बनाकर समाधान के प्रयास भी आवश्यक हैं।

मानवाधिकार की अवधारणा का संदर्भ सार्वभौमिक है। यह अत्यावश्यक है कि बच्चों को सार्वभौमिक मूल्यों से और ऐसे तरीकों से परिचित कराया जाए, जो उनकी उम्र के अनुकूल हों। रोज़मर्रा के मुद्दों के संदर्भ, जैसे पानी की समस्या आदि की भी चर्चा की जा सकती है ताकि बच्चे मानव सम्मान और अधिकार के मुद्दों के प्रति जागरूक बनें।

3.4.2 पाठ्यचर्या का नियोजन

प्राथमिक स्तरों पर, प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण को गणित और भाषा के अंतरंग भाग की तरह समझाया जाए। बच्चों को ऐसी गतिविधियों में लगाया जाना चाहिए कि वे भौतिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक रेखांकनों के माध्यम से वातावरण को समझ सकें। भाषा इस प्रकार की हो जिसमें जेंडर संवेदनशीलता हो, शिक्षण की विधि सहभागिता और विचार-विमर्श पर आधारित हो।

कक्षा 3 से 5 के लिए पर्यावरण अध्ययन के विषय की शिक्षा दी जानी चाहिए। प्राकृतिक वातावरण के अध्ययन में, उसके संरक्षण और क्षरण से बचाने की आवश्यकता पर ज़ोर होना चाहिए। इससे ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में बच्चे गरीबी, बाल श्रम, अशिक्षा, जाति और वर्ग असमानता के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे। विषयवस्तु बच्चों के दैनंदिन अनुभवों और उनके संसार को प्रतिबिंबित कर पाने लायक होनी चाहिए ।

उच्च प्राथमिक स्तर पर, सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र से मिलती है। इतिहास में भारत के अलग-अलग हिस्सों में होने वाले विकास पर ध्यान दिया जाए, जिसमें विश्व के अन्य भागों में हो रहे विकास के भी खंड हों। भूगोल में पर्यावरण, संसाधन तथा स्थानीय से वैश्विक स्तर पर विभिन्न स्तरों के विकास के बीच संतुलन बिठाने का प्रयास किया जा सकता है। राजनीति विज्ञान में विद्यार्थियों का परिचय स्थानीय, राज्य और केंद्रीय स्तर पर सरकार के गठन और उनके कार्यों और सहभागिता की प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं से कराया जाए। अर्थशास्त्र विद्यार्थियों को आर्थिक संस्थानों; जैसे - परिवार, बाज़ार और राज्य की समझ देने पर केंद्रित हो। एक खंड इस प्रकार का हो जिसमें विभिन्न विषयों के अंतरअनुशासनिक अध्ययन पर बल होगा।

माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान के तहत इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र पढ़ाए जाएँगे। इसमें समकालीन भारत पर ध्यान दिया जाएगा और विद्यार्थी में राष्ट्र के समक्ष उपस्थित सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों

की गहरी समझ बनाने के प्रयास होंगे। प्रस्तावित ज्ञानमीमांसीय बदलाव के आधार पर इनकी चर्चा बहुविध दृष्टिकोण से की जाएगी, जिसमें आदिवासी, दलितों और नागरिक अधिकारों से वंचित जनता के दृष्टिकोण को भी जगह दी जाएगी। प्रयास होगा कि विषयवस्तु को अधिक से अधिक संभव तरीकों से बच्चे के दैनिक जीवन से जोड़ा जाए। इतिहास के अंतर्गत, स्वाधीनता संग्राम सहित आधुनिक भारत के अन्य पहलुओं के साथ विश्व की अन्य मांगों के महत्वपूर्ण घटनाक्रमों को भी पढ़ा जा सकता है। इतिहास को इस तरह से पढ़ाया जाना चाहिए कि उसके माध्यम से विद्यार्थियों में अपने विश्व की बेहतर समझ विकसित हो और वे अपनी उस पहचान को भी समझ सकें जो समृद्ध तथा विविध अतीत का हिस्सा रही है। ऐसे प्रयास होने चाहिए कि इतिहास, विद्यार्थियों को विश्व में होते रहे बदलावों और निरंतरता की प्रक्रियाओं की खोज में सक्षम बना पाए और वे यह तुलना भी कर सकें कि सत्ता और नियंत्रण के तरीके क्या थे, और आज क्या हैं। भूगोल की शिक्षा इस बात को

पानी एवं वातावरण	
पानी कहाँ से आता है? समुद्र, महासागर, नदियाँ कैसे बनती हैं? पानी के हमारे स्थानीय स्रोत क्या हैं? कुएं क्यों सूख जाते हैं? हैन्डपम्प कैसे काम करते हैं? क्या बड़े बाँध, छोटे बाँधों की अपेक्षा ज्यादा लाभदायक हैं? रेगिस्तानी इलाकों में लोगों को पानी कैसे मिलता है? सूखा पड़ने का क्या कारण है?	**पानी के प्राकृतिक स्रोत** नदियाँ, झीलें, समुद्र, धरती के नीचे का पानी (या भूजल) **जल संसाधन मानचित्रीकरण** स्थानीय/क्षेत्रीय/राष्ट्रीय **मनुष्य निर्मित एवं प्राकृतिक जल स्रोतों के बीच संबंध** भू-जल स्तर, हैन्डपम्प द्वारा सिंचाई, बड़े बाँधों के वातावरण पर होने वाले असर को समझना **विभिन्न पारिस्थितिकीय तंत्रों में जल** रेगिस्तानी इलाको में पानी के स्रोत पहाड़ी इलाकों में पानी के स्रोत सूखा एवं बाढ़
पानी के सामाजिक पहलू	
गाँव के कुएँ को कौन नियंत्रित करता है? जल कौन लाता है? क्या हमारे पास पर्याप्त मात्रा में पानी है? स्वच्छ जल क्यों आवश्यक है?	**जाति एवं वर्ग** जल स्रोत पर स्वच्छता एवं प्रदूषण नियंत्रण **श्रम का जेंडर विभाजन तथा पानी की उपलब्धता** पीने एवं सिचाई के पानी को लेकर स्थानीय एवं क्षेत्रीय संघर्ष बाजार की शक्ति के रूप में पानी **स्वास्थ्य** शरीर की जल आवश्यकता स्वच्छ जल का अधिकार जल से उत्पन्न बीमारियाँ।

ध्यान में रखकर दी जानी चाहिए कि बच्चों के मस्तिष्क में संरक्षण और पर्यावरण तथा विकास संबंधी मुद्दों के प्रति आलोचनात्मक परख विकसित हो सके। राजनीति विज्ञान में, भारतीय संविधान के दार्शनिक आधारों पर ध्यान दिया जाए और समानता, उदारता, स्वतंत्रता, न्याय, भाईचारा, धर्मनिरपेक्षता, सम्मान, बहुलता तथा उत्पीड़न से मुक्ति जैसे मुद्दों की गहराई से चर्चा हो। चूँकि अर्थशास्त्र के अनुशासन को इस स्तर पर आरंभ किया जा रहा है, अतः इसमें लोगों के दृष्टिकोण से विभिन्न विषयों की चर्चा हो।

उच्चतर माध्यमिक स्तर महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विद्यार्थियों को विषयों को चुनने का विकल्प देता है। कुछ विद्यार्थियों के लिए यह स्तर औपचारिक शिक्षा का अंतिम चरण होता है; इसके बाद कुछ विद्यार्थी काम और रोज़गार की दुनिया में निकल पड़ते हैं, तो कुछ दूसरों के लिए यह उच्च शिक्षा का आधार बनता है। वे या तो विशिष्ट अकादमिक पाठ्यक्रम अपनाते हैं या रोज़गार उन्मुख व्यावसायिक पाठ्यक्रम। अतः यहाँ आधार इस तरह तैयार किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी अपने चुने हुए मार्ग पर सार्थक रूप से कुछ कर सकें। समाज विज्ञान से लेकर वाणिज्य तक अनेक प्रकार के पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जाते हैं जिनमें से विद्यार्थी अपने पसंद का विषय चुन सकते हैं। विषयों को अलग-अलग 'धाराओं' में नहीं बाँटा जाना चाहिए और विद्यार्थियों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे अपनी पसंद, आवश्यकता और दक्षता के अनुसार विषय का चयन कर सकें। समाज विज्ञान के अंतर्गत राजनीति विज्ञान, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान जैसे विषय होंगे। वाणिज्य के अंतर्गत बिजनेस स्टडीज (व्यापार अध्ययन) और लेखाशास्त्र शामिल हो सकते हैं।

3.4.3 शिक्षाशास्त्र और संसाधनों के अभिगम

सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को परस्पर सम्पर्क-संवाद के वातावरण की मदद से पुनर्जीवित कर सीखने वालों को ज्ञान कौशलों को ग्रहण करने का अवसर देना होगा। सामाजिक विज्ञान शिक्षण में ऐसी विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए जो रचनात्मकता, सौंदर्यबोध तथा आलोचनात्मक समझ बढ़ाएँ और बच्चों को अतीत तथा वर्तमान के बीच संबंध बनाने एवं समाज में होने वाले परिवर्तनों को समझने में सक्षम करें । समस्या समाधान, नाटकीकरण तथा भूमिका निर्वाह (रोल-प्ले) कुछ ऐसी विधाएँ हैं जो उपयोग में लाई जा सकती हैं, हालांकि उनका अभी तक ज्यादा इस्तेमाल हुआ नहीं है। शिक्षण में श्रव्य-दृश्य सामग्री, तस्वीरें, चार्ट्स, नक्शे तथा पुरातत्ववादी और भौतिक संस्कृतियों की प्रतिकृतियों जैसे संसाधनों का भी उपयोग किया जाना चाहिए।

अधिगम क्रिया को सहभागी बनाने के लिए आवश्यकता ऐसे बदलाव की है जिसमें केवल सूचना देने के स्थान पर वाद-विवाद और चर्चाएँ की जाएँ। सीखने का यह तरीका शिक्षक एवं शिक्षार्थी को सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति सजग करेगा।

व्यक्तियों एवं समुदायों के जीवन के अनुभवों की सहायता से विद्यार्थियों को अवधारणाएँ स्पष्ट की जानी चाहिए। अक्सर यह देखा गया है कि सांस्कृतिक, सामाजिक और वर्ग अंतर कक्षागत संदर्भों में अपने स्वयं के पक्षपात, पूर्वग्रह तथा व्यवहार उत्पन्न करता है। इसलिए शिक्षण के उपागम में खुलापन होना चाहिए। शिक्षकों को कक्षा में सामाजिक वास्तविकता के विभिन्न आयामों के बारे में बात करनी चाहिए, तथा स्वयं एवं विद्यार्थियों में स्व-जागरूकता बढ़ाने के लिए कार्य करना चाहिए।

3.5 कला शिक्षा

दशकों से शिक्षा व्यवस्था में कला के महत्व पर बार-बार चर्चा हुई है और इसकी अनुशंसा की

जाती रही है, लेकिन इस दिशा में कुछ खास प्रगति नहीं हुई है। अगर अपनी अनूठी सांस्कृतिक पहचान को उसकी विविधता और समृद्धता सहित बचाए रखना है तो औपचारिक शिक्षा में कला शिक्षा को तत्काल समेकित करना होगा। कला

शिक्षा में रंगमंच

रंगमंच एक शक्तिशाली लेकिन शिक्षा में सबसे कम उपयोग में लाया गया कला का रूप है । दूसरों के संबंध में स्व की खोज, स्व की समझ का विकास, आलोचनात्मक सहानुभूति केवल मनुष्यों में ही नहीं बल्कि प्राकृतिक, भौतिक एवं सामाजिक विश्व में भी सर्वश्रेष्ठ माध्यम है।

पाठ का नाटकीकरण करना रंगमंच का एक लघु भाग है। इससे अधिक सार्थक अनुभव, भूमिका निर्वाह, रंगमंच अभ्यासों, शरीर और स्वर की गति एवं नियंत्रण सामूहिक एवं सहज प्रदर्शन द्वारा संभव हो सकते हैं।

यह अनुभव शिक्षकों के स्वयं के विकास के लिए तो महत्त्वपूर्ण हैं ही साथ ही बच्चों के लिए भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं।

अध्ययन की दिशा में प्रोत्साहित किए जाने की बजाए हमारी शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थियों और सृजनात्मक दिमागों को कलाओं को अपनाने से हतोत्साहित करती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था कला को 'उपयोगी शौक' या 'मनोरंजक गतिविधि' मात्र मानती है। कला बस स्कूल के स्थापना दिवस, वार्षिक दिवस, गणतंत्र दिवस या स्कूल निरीक्षण के दौरों के अवसर पर प्रदर्शन की वस्तु बनकर रह गई है। इन अवसरों के पहले या बाद स्कूल में विद्यार्थियों को कला से दूर ही रखा जाता है और विद्यार्थियों को उन्हीं विषयों की ओर धकेला जाता है जिन्हें पढ़ना परीक्षा की दृष्टि से अधिक उपयोगी होता है। कला की सामान्य समझ धीरे-धीरे न केवल विद्यार्थियों, उनके अभिभावकों और शिक्षकों में, बल्कि नीति निर्माताओं व शिक्षाविदों में भी कम हो रही है।

शीत ऋतु की एक सुबह

शिक्षिका ने बच्चों को प्रातःकालीन दृश्य बनाने के लिए कहा। एक बच्चे ने अपना चित्र पूरा किया और पार्श्व को गाढ़ा कर दिया लगभग सूर्य को छिपाते हुए। "मैंने तुम्हें प्रातःकालीन दृश्य बनाने के लिए कहा था, सूर्य को चमकना चाहिए।" शिक्षिका चिल्ला उठी, उसने यह ध्यान नहीं दिया कि बच्चे की आँखें खिड़की से बाहर देख रही हैं; आज अभी तक अँधेरा था, सूर्य गहरे काले बादलों के पीछे छिपा हुआ था ।

स्कूल और स्कूल प्रशासन एक सतही और लोकप्रिय किस्म की कला को प्रोत्साहन देते हैं और उनका गर्व से प्रदर्शन करते हैं जो मनोरंजक नाच-गानों-नाटकों से भरपूर हों, पर जिसमें सौंदर्यबोध का अभाव हो। हम कला के महत्व की अधिक समय तक उपेक्षा नहीं कर सकते और हमें बच्चों में कला संबंधी जागरूकता व रुचि के प्रसार-प्रोत्साहन के लिए सारे संभावित संसाधन और सारी ऊर्जा लगा देनी चाहिए। भारत में कला, धर्मनिरपेक्षता और सांस्कृतिक विविधता का जीता-जागता उदाहरण है। उसमें देश के हर भाग के लोक और शास्त्रीय गायन, नृत्य, संगीत, पुतले बनाना, मिट्टी का काम आदि शामिल हैं। इनमें से किसी भी कला का अध्ययन हमारे युवा विद्यार्थियों के ज्ञान को न केवल समृद्ध करेगा, बल्कि वह स्कूल के बाहर भी जीवन भर उनके काम आएगा।

दृश्य और प्रदर्शन दोनों ही कलाओं को पाठ्यचर्या में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाए जाने की ज़रूरत है। बच्चे इन क्षेत्रों में केवल मनोरंजन के लिए ही कौशल हासिल न करें बल्कि और भी दक्षताएँ विकसित करें। कला की पाठ्यचर्या के द्वारा विद्यार्थियों का देश की विविध कलात्मक परंपराओं से परिचय करवाना चाहिए। कला शिक्षा आवश्यक रूप से एक उपकरण और विषय के रूप में शिक्षा का हिस्सा (कक्षा 10 तक) हो और हर

विरासत शिल्प पंरपराएँ

हस्तशिल्प एक उत्पादक प्रक्रिया है, एक अद्‌भुत भारतीय तकनीक जो पुरानी नहीं है। इसमें उपयोग में लाई जा सकने वाली सामग्री भारत में उपलब्ध है तथा पर्यावरण हितैषी है। यहाँ जीवंत हस्तशिल्प के कौशलों, तकनीकी, मॉडलों तथा उत्पादों के समृद्ध संसाधन हैं जो कला और काम दोनों पाठ्यचर्या क्षेत्रों के लिए समृद्ध व अत्यावश्यक संसाधन हैं तथा बन सकते हैं। हाथ से काम करना, सामग्री और तकनीकी का उपयोग करना प्रक्रियाओं को समझने में, संसाधन संपन्न होने में, पहल करने में तथा समस्या का समाधान करने में सहायता करता है। ये अनुभव बच्चों के लिए बहुत मूल्यवान होते हैं और किसी अन्य अनुभव के पर्याय नहीं हो सकते । यह क्षेत्र समावेशी शिक्षा के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

हस्तशिल्प को सृजनात्मक तथा सौंदर्यबोध की गतिविधि के रूप में और कार्य की तरह पढ़ाया जाना चाहिए। इसे इतिहास के अध्यापक, सामाजिक विज्ञान तथा पर्यावरण अध्ययन, भूगोल तथा अर्थशास्त्र से जोड़ा जा सकता है। जेंडर, पर्यावरण और समुदाय पर एक दृष्टिकोण का विकास करना 'आलोचनात्मक हस्तशिल्प' अध्ययन का अंग बनाया जाना चाहिए।

- हस्तशिल्प पाठ्यचर्या में कला के भाग के रूप में सृजनात्मकता एवं सौंदर्यबोध के पक्षों पर बल देते हुए जोड़े जा सकते हैं।
- शिल्पकार स्वयं ही हस्तशिल्प के शिक्षक एवं प्रशिक्षक होने चाहिए और हमें ऐसे तरीके तलाशने होंगे जिससे वे विद्यालय में अंशकालिक सेवा दे सकें।
- हस्तशिल्प एक जीवंत, आनुभविक अभ्यास के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए।
- यह प्रोजेक्ट के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए न कि कक्षागत अभ्यासों के रूप में ।
- विभिन्न हस्तशिल्पों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्या सामग्रियों की योजना बनाई जानी चाहिए; संसाधन; जैसे- मॉडल पुस्तकें, स्रोत पुस्तकें, उपकरण निर्देशिकाएँ, मॉडल तथा हस्तशिल्प नक्शे।
- उपयुक्त सामग्रियों तथा उपकरणों के साथ हस्तशिल्प प्रयोगशालाएँ विकसित करने की आवश्यकता है ।
- हस्तशिल्प मेले आयोजित किए जा सकते हैं ताकि बच्चों का हस्तशिल्पकारों, हस्तशिल्प परंपराओं से परिचय हो और उनके तथा सृजनात्मक प्रयत्नों को प्रदर्शित किया जा सके।

स्कूल में इससे संबंधित सुविधाएँ हों। कला के अंतर्गत — संगीत, नृत्य, दृश्य-कला और नाटक — चारों को शामिल किया जाना चाहिए। कला के महत्त्व के संबंध में अभिभावकों, स्कूल अधिकारियों और प्रशासकों को अवगत कराए जाने की ज़रूरत है। कला शिक्षण में ज़ोर सीखने पर हो न कि सिखाने पर और इसमें दृष्टि सहभागिता पर आधारित हो।

स्कूल के सालों के दौरान, हर स्तर पर, कला के विविध माध्यम और स्वरूप बच्चों को खेल-खेल में तथा विषयबद्ध रूप में विकसित होने में मदद करते हैं, उन्हें अभिव्यक्ति के कई रास्ते सिखाते हैं। संगीत, नृत्य और नाटक विद्यार्थियों के आत्मबोध उनके ज्ञानात्मक और सामाजिक विकास में सहायक होते हैं। पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक स्तरों पर ये सभी कलाएँ बेहद महत्त्वपूर्ण हैं।

बच्चे भाषा, प्रकृति के रूपों की खोज, स्वयं की और अन्य की समझ आदि को कला के माध्यम से आसानी से विकसित कर सकते हैं। कला की प्रकृति ही ऐसी होती है कि सभी बच्चे उसमें भागीदारी कर सकते हैं।

कला और विरासत शिल्पों को शिक्षा से जोड़ने के संसाधन हर स्कूल में उपलब्ध होने चाहिए। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि पाठ्यचर्या में कला गतिविधियों के लिए पर्याप्त समय हो। नाटक-नृत्य, मूर्तिकला संबंधी कक्षाओं के लिए घंटे-डेढ़ घंटे का समय चाहिए। ज़ोर इस बात पर नहीं हो कि बच्चे वयस्कों के मानकों के हिसाब से कला सीखें या पूर्ण कला का विकास हो, बल्कि कला-शिक्षा के माध्यम से बच्चे को अपने आप विकसित होने का मौका दिया जाए, उन पर अधिक दबाव न डाला जाए। कुछ सालों में शिक्षक की सहायता से विद्यार्थी अपने समर्पण व मेहनत से स्वतंत्र कला परियोजनाएँ प्रस्तुत कर पाएँगे जिसके साथ उनमें सौंदर्यबोध, गुणवत्ता व श्रेष्ठता भी पनप सकेगी।

माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तरों पर स्कूलों की कला पाठ्यचर्या में विद्यार्थी को अपनी

रुचि की किसी कला में विशेषज्ञता लेने दी जाए। कला की तालीम लेते और उसका अभ्यास करते विद्यार्थी इस उम्र तक कला व सौंदर्यबोध के संबंध में कुछ सैद्धांतिक ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं, जो ज्ञान के इस क्षेत्र के महत्त्व को गहराई से समझने में मदद करेगा। लोकप्रिय कला चर्चा, विभिन्न प्रकार की कला-परंपराओं व रचनात्मकता की विधाओं से उनको अलग-अलग रुचियों-परंपराओं की जानकारी भी मिल सकेगी। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि पाठ्यचर्या में उच्च या निम्न कला का उल्लेख न हो, उसमें शास्त्रीय और लोक कला का भेद न हो। इससे वे विद्यार्थी भी तैयार हो सकेंगे जो बारहवीं के लिए कला का विशेष अध्ययन करना चाहते हैं या आगे कला को ही अपना व्यवसाय बनाना चाहते हैं।

कला शिक्षा पर शिक्षकों को अधिक संसाधनात्मक सामग्री दी जाए। शिक्षक-प्रशिक्षण और अभिमुखीकरण में ऐसे महत्वपूर्ण अवयव होने चाहिए ताकि शिक्षक दक्षता से और रचनात्मक ढंग से कला का शिक्षण कर सकें। साथ ही, बाल भवनों, जिन्होंने शहरों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, को जिला और सभी खण्ड के स्तरों पर स्थापित किया जाए। इससे कला और शिल्प संबंधी ज्ञान और अनुभव का अतिरिक्त विकास हो सकेगा और बच्चों को अवसर मिलेगा कि वे किसी कला को प्रत्यक्ष रूप से सीख सकें।

3.6 स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

यह मानी हुई बात है कि स्वास्थ्य पर जैविक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक ताकतों का प्रभाव पड़ता है। बुनियादी आवश्यकताओं; जैसे - भोजन, साफ़ पानी, घर, सफ़ाई और स्वास्थ्य सेवाओं तक जनता की पहुंच स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। किसी आबादी की स्वास्थ्य की स्थिति मृत्यु-दर और पोषक तत्वों की उपलब्धता में परिलक्षित होती है। स्वास्थ्य बच्चे के समग्र विकास का सूचक होता है और यह नामांकन, स्कूल में उपस्थिति और पढ़ाई पूरी करने को प्रभावित करता है। इस संबंध में पाठ्यचर्या में स्वास्थ्य को लेकर एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है जिसमें योग और शारीरिक शिक्षा बच्चे के शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक और मानसिक विकास में अपना योगदान कर सकते हैं।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा के दौरान इस देश के ज्यादातर बच्चों को कुपोषण और छूत के रोगों का सामना करना पड़ता है। इसलिए स्कूल में हर स्तर पर इस समस्या से निपटने की ज़रूरत है, विशेषकर कमज़ोर तबके के बच्चों और लड़कियों के मामले में। यह प्रस्तावित किया गया है कि मध्याह्न भोजन (मिड-डे मील) कार्यक्रम और स्वास्थ्य जांच को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया जाए और स्वास्थ्य संबंधी-शिक्षा भी दी जाए जो विकास के अलग-अलग चरणों में स्वास्थ्य संबंधी-समस्याओं की जानकारी दे। 1940 के दशक में स्कूलों के लिए विस्तृत स्वास्थ्य कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई गई थी जिसके छह प्रमुख घटक थे - स्वास्थ्य सेवा, स्वच्छ स्कूल पर्यावरण, दोपहर का भोजन, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा इत्यादि। ये घटक बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं और इनको पाठ्यचर्या में शामिल किए जाने की ज़रूरत है। पाठ्यचर्या में योग हाल में जोड़ा गया है। इन सभी घटकों को सामूहिक रूप से विस्तृत स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के रूप में पाठ्यचर्या में लिया जाना चाहिए, न कि आज की तरह टुकड़ों-टुकड़ों में। पाठ्यचर्या के मुख्य अवयव के रूप में खेलों और योग के लिए जो समय निर्धारित है उसे किसी भी परिस्थिति में न तो कम किया जाए न ही समाप्त किया जाए।

इस बात की समझ बढ़ रही है कि किशोरों की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं, विशेषकर उनके प्रजनन और यौन संबंधी आवश्यकताओं पर ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है। चूंकि इन आवश्यकताओं का संबंध यौन या यौनिकता से है जो सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील मुद्दा है, विद्यार्थियों को उचित सूचना पाने के अवसरों से वंचित रखा जाता है।

चूंकि यौन संबंधी उनकी समझ सुनी-सुनाई बातों, मिथकों या भ्रांतिपूर्ण धारणाओं पर आधारित होती है, वे खतरनाक स्थितियों में पड़ जाते हैं। इससे नशीले पदार्थ या उनमें एचआईवी/एड्स संक्रमण आदि का खतरा बढ़ जाता है। आयु-आधारित और संदर्भ-विशिष्ट हस्तक्षेपों को जगह दी जाए, जो किशोर के यौन स्वास्थ्य से संबंधित हों, ताकि एचआईवी/एड्स और नशे की आदतों से उनको सावधान किया जा सके। इसलिए बच्चों को इस संबंध में ज्ञान बढ़ाने और जीवन के कौशल सिखाने की दिशा में प्रयास आवश्यक हैं, ताकि वे बढ़ती उम्र की समस्याओं से जूझ सकें।

3.6.1 रणनीतियाँ

स्वास्थ्य की बहुआयामी प्रकृति के कारण पाठ्यचर्या में विविध गतिविधियों तथा समाकलन के अनेक अवसर हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना, भारत स्काउट एवं गाइड और एनसीसी की गतिविधियाँ ऐसे ही कुछ क्षेत्र हैं। विज्ञान शरीर, स्वास्थ्य, रोगों और जीवित अवयवों और भौतिक वातावरण के बारे में जानने के अवसर प्रदान करता है। सामाजिक विज्ञान सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में सामुदायिक स्वास्थ्य और संक्रामक बीमारियों के फैलने और उसके इलाज के बारे में अंतर्दृष्टि देता है। इस विषय में करते हुए सीखा जा सकता है और पाठ्यचर्या में नवीन उपागमों को अपनाया जा सकता है।

सर्वांगीण विकास के संदर्भ में इस विषय की उपयोगिता को नीतिगत स्तर पर रेखांकित करने की ज़रूरत है, जिसमें प्रशासकों, स्कूल में अन्य विषयों के शिक्षक, स्वास्थ्य विभाग, अभिभावक और बच्चे भागीदारी कर सकते हैं। इस विषय को स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा का आधार मानकर इसे अनिवार्य विषय के रूप में प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तरों पर लागू किया जाना चाहिए और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर एक वैकल्पिक विषय के रूप में। बहरहाल, इसे अन्य विषयों के समान दर्जा दिए जाने की ज़रूरत है, एक ऐसा दर्जा जो इसे अभी प्राप्त नहीं है। पाठ्यचर्या को प्रभावी ढंग से पढ़ाने के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक होगा कि इसके लिए न्यूनतम स्थान और उपकरण हर स्कूल में हों तथा डॉक्टर और चिकित्सा से जुड़े लोग स्कूल में नियमित तौर पर आएँ। इस क्षेत्र में शिक्षक की तैयारी योजनाबद्ध हो और संयुक्त प्रयास किए जाएँ। इसके विषय क्षेत्रों, जिसमें स्वास्थ्य शिक्षा, शारीरिक शिक्षा और योग आते हैं, को उपयुक्त ढंग से प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के सेवा-पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों से जोड़ा जाए। वर्तमान शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों की पर्याप्त ढंग से समीक्षा की जाए और उनका उपयोग किया जाए। इसी प्रकार, स्कूल में योग की शिक्षा के लिए उचित पाठ्यक्रम तथा शिक्षक-प्रशिक्षण की पद्धति अपनाई जाए। यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि इन पहलुओं को राष्ट्रीय सेवा योजना, स्काउट एवं गाइड और एनसीसी से भी जोड़ा जाए।

'आवश्यकता आधारित उपागम' शारीरिक, मनो-सामाजिक तथा मानसिक पक्षों के विभिन्न आयामों को निर्देशित कर सकता है जिन्हें स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सम्मिलित करने की आवश्यकता है। इन सरोकारों की मूल समझ आवश्यक है लेकिन महत्वपूर्ण आयाम यह है कि खेलों, अभ्यासों, वैयक्तिक और सामुदायिक स्वच्छता के साथ व्यावहारिक रूप से जुड़ कर स्वास्थ्य, कौशलों और शारीरिक कुशलक्षेम का विकास किया जाए। स्वास्थ्य और सामुदायिक जीवन में व्यक्तिगत और सामूहिक जिम्मेदारियों पर ज़ोर दिए जाने की ज़रूरत है। राष्ट्रीय स्तर के कई स्वास्थ्य कार्यक्रम; जैसे- एचआईवी, प्रजनन व बाल स्वास्थ्य, एचआईवी/एड्स, टीबी और मानसिक स्वास्थ्य कई राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम बच्चों को ध्यान में रखकर बचाव के उपाय करने में लगे हैं। बच्चों पर इन कार्यक्रमों

की माँगों को मौजूदा पाठ्यचर्या से भी जोड़ा जाना चाहिए।

अनौपचारिक तौर पर तो योग की पढ़ाई प्राथमिक स्तर से ही शुरू की जा सकती है मगर यौगिक अभ्यास आदि कक्षा छह के बाद ही शुरू किए जाएँ। स्वास्थ्य और स्वच्छता को लेकर बच्चों की शिक्षा का संबंध भी बच्चों के जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से होना चाहिए। स्थानीय स्तर के खेलों को शामिल किए जाने पर ज़ोर होना चाहिए।

कम से कम खण्ड स्तर पर विशेष रूप से स्कूल में उपलब्ध स्थान का उपयोग करते हुए प्रतिभाशाली खिलाड़ियों के लिए स्कूल से पहले और बाद में विशेष तौर पर खेल और प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जानी चाहिए। ऐसा ही छुट्टियों के दौरान भी संभव हो सकता है। यह भी संभव है कि खेल-संबंधी सुविधाओं का विकास किया जाए ताकि खाली समय में बच्चे वहाँ बास्केट बॉल, वॉलीबॉल, थ्रो बॉल और स्थानीय खेलों का आनंद उठा सकें।

3.7 काम और शिक्षा

काम के बारे में सामान्य अर्थों में कहें तो यह एक ऐसी गतिविधि है जो कुछ बनाने या करने की तरफ इशारा करती है। इसका यह भी मतलब होता है कि धन या किसी अन्य वस्तु के बदले किसी और के लिए श्रम। इस प्रकार की कई गतिविधियाँ भोजन तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं के उत्पादन और लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की देखरेख से संबंधित हैं। अन्य गतिविधियों का संबंध समाज में प्रशासन और व्यवस्था से है। समाज में इन दो बुनियादी आयामों के अलावा (भोजन उत्पादन और सुचारू व्यवस्था की स्थापना) और भी कई ऐसी गतिविधियाँ हैं जिनका संबंध मनुष्य के हित से होता है और इसलिए उनको भी काम की श्रेणी में डाला जा सकता है।

इस अर्थ में काम से तात्पर्य हुआ समाज और/या समुदाय के अन्य लोगों के प्रति दायित्व का निर्वाह। इसका यह भी अर्थ है कि समाज में व्यक्ति अपना और अपनी सामर्थ्य का योगदान दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा अर्थोपार्जन हेतु कर रहा है। दूसरे, इसका आशय होता है कि किया गया काम सार्वजनिक निष्पादन मानकों के अनुरूप हो। क्योंकि किसी के योगदान का मूल्य दूसरे लोग लगाते हैं। तीसरे, काम का मतलब सामाजिक जीवन में योगदान भी हो सकता है, चाहे वह समाज के लिए कुछ उत्पादन करना हो या सामान्य जीवन को संभव बनाने की कोई गतिविधि। अंतिम बात यह है कि, काम मानव जीवन को समृद्ध बनाता है, क्योंकि यह सम्मान तथा आनंद के नए आयाम सामने रखता है।

हालांकि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अक्सर समाज में बच्चों का समाजीकरण भेदभावपूर्ण ढंग से होता है। वयस्क, बच्चों का समाजीकरण एक प्रभावी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमान के अनुसार करते हैं। यह पहचानने की ज़रूरत है कि बच्चों और वयस्कों का समाजीकरण एक ही तरह से होता है। हमें यह भी याद रखने की ज़रूरत है कि बंधुआ मजदूरी उत्पीड़नों में से सबसे घटिया उत्पीड़न है। इसलिए इसकी पर्याप्त तैयारी होनी चाहिए कि काम को पाठ्यचर्या का अहम हिस्सा बनाया जाए तो उसमें यह स्थिति नहीं हो कि वह काम बच्चों को लादा हुआ लगे और उनके सीखने की क्षमता इससे प्रभावित हो। रोज़-रोज़ की बार-बार दोहराई जाने वाली गतिविधियाँ जो काम के उत्पादन के नाम पर या काम को जाति या लिंग के आधार पर बाँटने के लिए चलाई जा सकती हैं, को सख्ती से रोका जाना चाहिए। साथ ही, अगर शिक्षक स्वयं उसमें बिना शामिल हुए विद्यार्थियों को काम करने के लिए कहें तो उससे भी पाठ्यचर्या में काम को समेकित करने का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाएगा। स्कूल में काम की शुरुआत बच्चों के शोषण का माध्यम नहीं बनना चाहिए।

काम बच्चों के लिए सीखने का क्षेत्र भी होता है, चाहे वह घर में हो, स्कूल में या समाज में या काम करने के स्थान पर। बच्चे काम की अवधारणा को दो वर्ष की उम्र से ही समझने लगते हैं। बच्चे अपने अभिभावकों की नकल करते हैं और उनके जैसा करने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिए यह देखना असामान्य नहीं है कि छोटे-छोटे बच्चे फर्श बुहारने का, या बैठकें करने का, या घर बनाने का, या खाना बनाने का अभिनय करें। कई शिक्षाशास्त्रीय विधियों में काम का उपयोग शैक्षणिक उपकरण के रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिए, मांटेसरी पद्धति में काम के कौशल और अवधारणाओं को काफी आरंभ से पाठ्यचर्या में जगह दी जाती है। सब्जी काटना, कक्षा साफ करना, बागबानी और कपड़े साफ करना शिक्षण-चक्र का हिस्सा होते हैं। बच्चों की आयु व, योग्यता को ध्यान में रखकर तैयार किया गया उपयोगी काम उनके सामान्य विकास में तो योगदान देता ही है, साथ ही जब उसे विद्यार्थियों के जीवन पर लागू किया जाता है, तो वह उनके लिए मूल्यों, बुनियादी वैज्ञानिक अवधारणाओं, कौशलों और रचनात्मक अभिव्यक्ति के कारक के रूप में काम करता है। बच्चे काम के द्वारा अपनी एक अस्मिता पाते हैं और स्वयं को उपयोगी और महत्वपूर्ण समझते हैं क्योंकि काम उनको अर्थवान बनाता है और इसके माध्यम से वे समाज का हिस्सा बनते हैं और ज्ञान के निर्माण में सक्षम हो पाते हैं।

काम के द्वारा व्यक्ति समाज में अपना स्थान बना पाता है। यह एक शैक्षणिक गतिविधि है जिसमें सबको शामिल करने की संभावना अंतरनिहित होती है। इसलिए, शैक्षणिक माहौल में काम में जुटने के अनुभव से समाज में व्यक्ति स्वयं को मूल्यवान समझता है, क्योंकि काम के कुछ पाने योग्य लक्ष्य होते हैं और इससे अंतर्निभरता का ताना-बाना बनता है। इसके अंतर्गत अनुशासनात्मक ढंग से काम करना शामिल होता है, जिससे आत्म-नियंत्रण, मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण और भावनाओं को काबू में रखने की क्षमता आती है। काम के मूल्य, विशेषकर उन कौशलों के जिनमें अचूक कारीगरी की मांग होती है, को कमतर माना जाता है, जबकि वे उत्कृष्टता पाने और आत्मानुशासन सीखने के माध्यम होते हैं। सामग्री से उभरने वाला अनुशासन (मिट्टी या काष्ठ का काम) अधिक प्रभावी होता है बजाए उस अनुशासन के जो एक व्यक्ति दूसरे पर लादता है। काम में सामग्री या दूसरे व्यक्ति के साथ संपर्क-संवाद (अधिकतर दोनों) शामिल होते हैं जिससे किसी प्राकृतिक वस्तु या सामाजिक संबंधों की समझ बढ़ती है। यह उस शारीरिक कौशल के अतिरिक्त होता है जो किसी ऐसे व्यापार को सीखने के लिए आवश्यक हो, जो रोजी-रोटी का साधन बन सकता है। काम के जिस पहलू का यहाँ ज़िक्र किया गया है उसका संबंध काम के संदर्भ में अर्थ-निर्माण और ज्ञान के सृजन से है। यह एक शिक्षा-संबंधी भूमिका है जो पाठ्यचर्या 'काम' में निभा सकती है।

अगर काम को स्कूली पाठ्यचर्या का अभिन्न हिस्सा बना दिया जाए तो इस तरह के लाभ काम से अर्जित किए जा सकते हैं। अकादमिक वातावरण में काम की शुरुआत में नयी प्रकार की सूझ से रचनात्मकता और काम की प्रकृति के ही बदल जाने की संभावना होती है। ऐसा इसलिए और भी आवश्यक हो गया है क्योंकि भारत के बहुसंख्य परिवारों में घर का कामकाज और पारिवारिक व्यापार, जीवन जीने का तरीका है। लेकिन यह पद्धति बच्चों के समय पर स्कूल के दबाव और रटंत विद्या के कारण बदल रही है। अकादमिक गतिविधियाँ अनुशासनात्मक जकड़न में फँस कर रह जाती हैं। अकादमिक शिक्षा और काम को जब साथ-साथ जोड़ दिया जाए तो उससे अकादमिक ज्ञान में रचनात्मकता और काम के क्षेत्र में भी अधिक सहजता आएगी। एक सहक्रियात्मक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है। इसी तरह से प्रभावी

हैंडपंप की रचना हुई थी। आरंभ में ऊँचा उड़ने वाले प्लास्टिक के बैलून अधिक ठंडे वातावरण से गुजरने के दौरान फट जाया करते थे, तब एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले कामगार ने बताया कि अगर इसमें थोड़ा सा कार्बन पाउडर डाल दिया जाए तो वह सूर्य की रोशनी का संश्लेषण कर कुछ गर्म बना रहेगा। सभी बड़े आविष्कार इसी तरह हुए। एडीसन, फोर्ड और फैराडे इसी वर्ग में आते हैं, या वे जिन्होंने पहले-पहल चश्मा या दूरबीन बनाई। इसमें कोई शक नहीं कि हमारे कुम्हारों, शिल्पियों, बुनकरों, किसानों और चिकित्सकों को पारंपरिक ज्ञान इसी तरीके से आया है जिसमें व्यक्ति एक साथ शारीरिक श्रम और अकादमिक चिंतन करते रहे हैं। हमें अपनी शिक्षा में ऐसी संस्कृति अपनाने की ज़रूरत है।

हालांकि संसाधनों और शिक्षण सामग्रियों के स्तर पर अभी स्कूल इस लायक नहीं हुए हैं कि काम को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया जा सके। काम आवश्यक रूप से अंतरअनुशासनात्मक होता है इसलिए काम को अगर स्कूली पाठ्यचर्या से जोड़ना हो तो अच्छी खासी शिक्षाशास्त्रीय समझ की ज़रूरत होगी जिससे यह समझा जा सके कि काम को अधिगम से कैसे समेकित किया जाए और इसका आकलन एवं मूल्यांकन कैसे हो?

स्कूल की पाठ्यचर्या में काम के संस्थानीकरण के लिए रचनात्मक और साहसिक चिंतन की आवश्यकता होगी जो काम को उपयोगी व उत्पादक सामाजिक कार्य (एसयूपीडब्लू) की जड़ता से तोड़ेगा, जिसके प्रति हमारे शिक्षक और विद्यार्थी संदेहशील हैं। उनका संदेहशील रहना उचित भी है। यह पता लगाने की आवश्यकता है कि किस प्रकार हाशिए पर रहने वाले बच्चे के समृद्ध ज्ञान आधार और कौशल उनके लिए सम्मान का जरिया और दूसरे बच्चों के लिए अधिगम का स्रोत बन सकता है। यह इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि उच्च-मध्यवर्ग के बच्चे अपनी सांस्कृतिक विरासत की जड़ों से कटते जा रहे हैं और शिक्षा तंत्र इस प्रक्रिया को बढ़ावा देने में केंद्रीय भूमिका निभा रहा है। समाज के व्यापक उत्पादक खण्डों के ज्ञान संग्रह को शिक्षा व्यवस्था के रूपांतरण में उपयोग की संभाव्यता है। काम को 'वैध ज्ञान' रूप में देखने से महिलाओं और प्रभुत्वहीन समूहों के काम की अदृश्यता को जांचने का मौका मिलेगा। यह परीक्षण उस काम के संदर्भ में होगा जिसे समाज में उपयोगी माना जाता है। उत्पादक-कार्य को पाठ्यचर्या का केंद्रीय आधार बनाया जाए तो पाठ्यचर्या की किताबी, सूचना-आधारित और सामान्यतया चुनौती न दी जा सकने वाली पद्धति बदली जा सकती है और बच्चों को जीवन-संबंधी आवश्यकताओं से जोड़ा जा सकता है। काम को इस्तेमाल करने का शिक्षाशास्त्रीय अनुभव बचपन और किशोरावस्था के विभिन्न स्तरों में विकास का एक प्रभावी और समीक्षात्मक औजार बन पाएगा। इसलिए काम-केंद्रित शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा से अलग है।

पूर्व-प्राथमिक से उच्चतर माध्यमिक स्तर की स्कूली पाठ्यचर्या का पुनर्गठन करना चाहिए ताकि काम को ज्ञान अर्जन का शिक्षाशास्त्रीय माध्यम बना कर मूल्यों व विविध कौशलों का विकास किया जा सके और काम की समस्त शिक्षाशास्त्रीय संभावनाएं हासिल की जा सकें। पाठ्यचर्या को यह पहचानना चाहिए कि जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है उसे काम के संसार में प्रवेश करने की तैयारी की ज़रूरत है और काम-केंद्रित शिक्षाशास्त्र में बढ़ती हुई जटिलताओं के साथ अनुसरण किया जा सकता है लेकिन उसको ज़रूरी लचीलेपन और प्रासंगिकता से समृद्ध भी रखना होगा। काम-आधारित सामान्य दक्षताएँ शिक्षा के हर स्तर पर दी जानी चाहिए। आलोचनात्मक सोच, अधिगम का हस्तांतरण, रचनात्मकता, संप्रेषण के कौशल, सौंदर्यबोध, काम के लिए प्रोत्साहन, सहयोगी क्रियान्वयन के मूल्य, और सामाजिक जवाबदेही व उद्यमशीलता इसमें

शांति की जानकारी के लिए गतिविधियाँ

उम 5+ सावधानी से देखभाल करें:

बच्चों को पंक्ति में खड़ा करें ।

उन्हें कागज से बनी केले के पौधे अथवा शाल वृक्ष की एक पत्ती दे दें।

उन्हें कहें कि वे जैसे भी चाहें उस पत्ती को पीछे पंक्ति तक पहुँचने दें। फिर एक बच्चा उस पत्ती को आगे ले आए और फिर से शुरुआत करें। उसके बाद बच्चों से कहा जाए कि वे पत्ती को विभिन्न तरह से पकड़ने के कारण होने वाले नुकसान को देखें ।

यह गतिविधि पत्तियों के बारे में तथा ये किन पेड़ों की पत्तियां है संबंधित बातचीत को बढ़ा सकती है। उस एक पत्ती का नुकसान पूरी प्रकृति का नुकसान है । पत्ती सम्पूर्ण सृजन का प्रतीक है।

उम्र 7+ भावनाएँ बाँटना:

बच्चों को एक गोल घेरे में बैठाएं और पूछें ''उनके जीवन का सबसे खुशी का दिन कौन सा था? क्यों वह दिन बहुत खुशी का था?'' प्रत्येक बच्चे को प्रश्न का उत्तर देने दें । कुछ बच्चों को एक या ज्यादा अनुभवों की भूमिका निर्वाह करने दें। जैसे ही बच्चे भावनाओं की बात करने से थोड़े परिचित हो जाएँ उनसे अधिक कठिन प्रश्न पूछें जैसे कि आपको सच में किस चीज से डर लगता है ? आप ऐसा क्यों महसूस करते हैं? जब आप किसी को लड़ते हुए देखते हैं तो आपको कैसा लगता है ? आपको ऐसा क्यों लगता है? आपको सबसे ज्यादा दुख किस चीज से पहुँचता है? क्यों ?

उम्र 10+ अन्याय को न्याय से दूर करें:

समझाएँ कि विश्व में अन्याय के बहुत सारे कारण हैं । यह भी बताएँ कि न्याय ही विश्व में शांति स्थापित करने का मूल माध्यम है । अन्याय के दो या तीन उदाहरण दें । बच्चों को अधिक उदाहरण देने के लिए कहें। उसके बाद पूछें–अन्याय का क्या कारण था ? आप इसी तरह परिस्थितियों में कैसा महसूस करेंगे ? कुछ बच्चों को उनके उत्तर पूरी कक्षा में बताने दें ?

उम्र 12+ शांति के अधिवक्ता बनें:

बच्चों को कहें कि वे शांति के अधिवक्ता हैं जो देश के लिए शांति के नियम बनाएंगे। उनके द्वारा सुझाए गए 5 महत्वपूर्ण नियमों की सूची बनाएँ। दूसरों द्वारा बताया गया कौन सा नियम आप अपनी सूची में जोड़ना चाहते हैं ? कौन से नियम आप मानना नहीं चाहते ? क्यों नहीं?

शामिल हैं। इसके लिए मूल्यांकन के मानक भी फिर से तय किए जाने होंगे। काम-केंद्रित शिक्षा के प्रभावी और सार्वभौमिक कार्यक्रम के बिना यह संभव नहीं दिखता कि सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा (और बाद में सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा) कभी सफल हो सकेगी।

3.8 शांति के लिए शिक्षा

हम अभूतपूर्व हिंसा के दौर में जी रहे हैं। इस दौर में असहिष्णुता, कट्टरवाद, विवाद और विस्वरता की निरंतर आशंकाएँ हैं। नैतिक कार्य, शांति और कल्याण कार्यों के सामने नयी चुनौतियाँ पेश आ रही हैं। अनसुलझे विवादों से युद्ध और हिंसा पैदा होती है हालांकि विवाद से हमेशा युद्ध और हिंसा पैदा नहीं होते। हिंसा और युद्ध विवाद की कई संभावित प्रतिक्रियाओं में से हैं । व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्र के संदर्भ में विवाद सुलझाने के लिए अहिंसात्मक उपाय ढूँढ़ने के कौशलों के पोषण की ज़रूरत है। वैश्विक, राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर बढ़ती हुई हिंसा के चलते राष्ट्रीय स्कूली पाठ्यचर्या के ढाँचे के इस दस्तावेज़ में शांति की शिक्षा का स्थान बाध्य रूप से स्पष्ट है। शांति स्थापित करने की दीर्घकालीन प्रक्रिया में शिक्षा एक महत्वपूर्ण आयाम है। इस शांति में सहनशीलता, न्याय, अंतःसांस्कृतिक समझ और नागरिक ज़िम्मेदारियाँ शामिल हैं। हालांकि जिस प्रकार की शिक्षा आज स्कूलों में दी जाती है उससे सांकेतिक और वास्तविक हिंसा को बढ़ावा ही मिलता है। इन परिस्थितियों में शिक्षा को पुनर्परिभाषित करने की ज़रूरत है और इसीलिए स्कूली पाठ्यचर्या को प्राथमिकता मिलती है। शिक्षा के मूल्य के रूप में शांति, पाठ्यचर्या के सभी क्षेत्रों से जुड़ी हुई है और उनमें निहित मूल्यों की पूरक है और उन्हें जोड़ती है। इसलिए यह एक ऐसा सरोकार है जो पाठ्यचर्या और शिक्षकों दोनों के लिए ही चिंता का विषय बन गया है।

शांति के लिए शिक्षा नैतिक विकास के साथ उन मूल्यों, दृष्टिकोण और कौशलों के पोषण पर बल देती है जो प्रकृति और मानव जगत के बीच सामंजस्य बिठाने के लिए आवश्यक हैं। इसमें जीने का हर्ष, प्रेम, उम्मीद और साहस के आंतरिक संसाधनों के साथ व्यक्तित्व का विकास शामिल है। इसमें मानव अधिकार, न्याय, सहिष्णुता, सहकार, सामाजिक दायित्व, सांस्कृतिक विविधता का सम्मान शामिल हैं। सामाजिक न्याय शांति शिक्षा का महत्वपूर्ण घटक है। समानता और सामाजिक न्याय जिसमें गरीबों, वंचितों, शोषितों के उत्पीड़न न किए जाने संबंधी दृष्टिकोण पर ज़ोर हो और जिसमें अहिंसामूलक समाज व्यवस्था के विकास पर ज़ोर हो, उसे शांति शिक्षा का आधार होना चाहिए। इसी तरह, मानव अधिकार शांति की अवधारणा का केंद्रीय आधार है। अगर लोगों के अधिकारों का हनन हो तो शांति का वातावरण नहीं बना रह सकता । मानव अधिकार की बुनियाद गैर-भेदभावपूर्ण आचरण और समता हैं जो समाज में शांति की व्यवस्था कायम करने की दिशा में काम करते हैं। ये मुद्दे आपस में जुड़े हुए हैं। इस प्रकार, शांति के लिए शिक्षा, कई मिले-जुले मूल्यों का योग है।

शांति गतिविधियों के लिए सुझाव

- स्कूल में विशेष क्लबों और रीडिंग रूम की स्थापना की जाए जो शांति संबंधी समाचारों पर और ऐसी घटनाओं पर केंद्रित हों जो सामाजिक न्याय और समानता के विरुद्ध हों।
- ऐसी फिल्मों की सूची तैयार की जाए जो न्याय और शांति के मूल्यों को बढ़ावा देती हों। उन्हें समय-समय पर स्कूल में दिखाया जाए।
- शिक्षा में शांति के प्रयास में मीडिया को सहयोगी बनाया जाए। प्रमुख पत्रकारों को बच्चों को संबोधित करने के लिए बुलाया जाए। बच्चों के विचार कम से कम महीने में एक बार छपें।
- स्कूल में धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता के उत्सवों का आयोजन किया जाए।
- ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिससे महिलाओं के प्रति सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो।

शांति की शिक्षा एक ऐसे सरोकार के रूप में विकसित हो जो समूचे स्कूली जीवन पर छा जाए — पाठ्यचर्या, कक्षा का वातावरण, स्कूल प्रबंधन, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध और स्कूल से जुड़ी तमाम गतिविधियाँ। अतः यह आवश्यक है कि पाठ्यचर्या और परीक्षा का इस दृष्टि से मूल्यांकन हो कि कहीं ये विद्यार्थियों में अपर्याप्तता, निराशा, धीरज और असुरक्षा आदि के भावों को बढ़ावा तो नहीं दे रहे हैं। साथ ही, आसपास और मीडिया द्वारा प्रचारित हिंसा का बच्चों के मन पर जो नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है उसे सायास दूर कर नैतिक एवं शांतिपूर्ण जीवन के उद्देश्यों के गहरे अर्थों को विकसित किया जाए। शिक्षा सच्चे अर्थ में व्यक्तियों के अपने मूल्यों को स्पष्ट कर पाने में सहायक हो, उनको सजग निर्णय की दिशा में प्रेरित करे, हिंसा के स्थान पर शांति को चुनने के लिए प्रेरित करे, शांति निर्माण की प्रक्रिया से उन्हें जोड़े न कि वे केवल शांति के उपभोक्ता बने रहें।

3.8.1 रणनीतियाँ

नैतिक विकास का मतलब इस तरह के आदेश देना नहीं है कि ‘यह करो’ और ‘यह न करो’, बल्कि इसके माध्यम से विद्यार्थी यह सीख सकते हैं कि सही क्या है, दया क्या है और व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में साझे हित में क्या उचित है।

बच्चे जो भी सुनते हैं उसमें से अधिकतर चीजों को समझ पाते हैं, लेकिन अक्सर कथनी और करनी में जो अंतर होता है उस विरोधाभास से सामंजस्य नहीं बिठा पाते। यहाँ तक कि घर में हुआ छोटा-सा विवाद भी बच्चों पर गहरा प्रभाव डाल सकता है। बड़ों के लगातार विवाद और माता-पिता के टूटते संबंध भय और विषाद का

अन्य जीवों द्वारा किए जाने वाले कार्य

बच्चों से किसी ऐसे जानवर या पक्षी का चुनाव करने को कहें जिसे वे अच्छी तरह जानते हों और फिर उन्हें उनके 'काम' सूचीबद्ध करने के लिए कहें तथा उनसे यह पूछें कि यह काम किसके हैं – पुरुष, स्त्री या बच्चे के? इस प्रकार के श्रम वितरण के कारणों की चर्चा करें और उसके पीछे के तर्क को समझाएँ। फिर उनसे उस शिक्षण के आधार पर कविता या लेख लिखने को कहें और उन्हें कक्षा में पोस्टर के रूप में लगाएँ।

कारण बनते हैं जो थोड़े समय बाद किशोरावस्था में हिंसा के रूप में प्रकट होते हैं। अकादमिक उद्देश्यों से भी अभिभावकों और शिक्षकों को साथ लाने की ज़रूरत है। क्योंकि व्यक्तिगत नैतिकता का विकास केवल अभिभावकों या केवल स्कूल पर ही नहीं छोड़ा जा सकता।

अलग-अलग आयु-समूहों के लिए नैतिक विकास अलग-अलग तरह से होता है। आरंभिक वर्षों में विद्यार्थी अपने आस-पास को समझने और उसके और अपने संबंध में चेतना के विकास में लगे रहते हैं। उनका व्यवहार सजा से बचने और पुरस्कार पाने के प्रति होता है। वे अच्छे-बुरे का अंदाज़ा इससे लगाते हैं कि कौन सी बात मानी गई, कौन सी नहीं। इस स्तर पर, वे बड़ों में जो देखते हैं उसी के अनुरूप नैतिक मूल्यों की अपनी समझ बनाते हैं।

जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, उनकी तार्किक क्षमताओं का तो विकास काफी हद तक होता है, फिर भी वे इतने परिपक्व नहीं हो पाते हैं कि मान्यताओं और मानकों पर प्रश्न खड़े कर सकें। दूसरों को प्रभावित करने और स्वयं को मज़बूत सिद्ध करने के क्रम में वे कानून तोड़ते हैं। इस चरण में नियमों, प्रतिबंधों, दायित्वों और शिष्टताओं की समीक्षा कर चिंतन को बढ़ावा देते हुए सामूहिक अच्छाई, त्याग, दया और संयम के मूल्यों के प्रति एक अंतर्दृष्टि विकसित की जा सकती है। यह चर्चा और बातचीत के द्वारा हो सकता है। ऐसे प्रयास उन्हें अपने नैतिक आचरण गढ़ने में सहायता करते हैं।

बाद में, जब उनमें अमूर्त चिंतन का पूरी तरह विकास हो जाता है, तो वे तार्किक ढंग से बता पाते हैं कि नैतिक आचरण क्या होता है। इससे ऐसे नैतिक सिद्धांतों की स्वीकृति और उनको आत्मसात किया जा सकता है जो टिकाऊ हों। किसी बाहरी सत्ता के बिना भी नैतिक रूप से बालिग व्यक्ति पूरी तरह से नियमों के अनुरूप काम करता है और जानता है कि संपूर्ण शांति बनाए रखने में इन मूल्यों का क्या योगदान है।

हमारे पुराने और अच्छे शिक्षकों ने कहानियों और संस्मरणों के माध्यम से आध्यात्मिक शिक्षा और सामाजिक संदेश देने को सबसे अच्छा तरीका माना था। साथ ही एक सार्वभौमिक सत्य यह भी है कि चाहे बच्चा कितना ही मंदबुद्धि हो, उसका घरेलू जीवन कितना ही खराब हो, उसके पास कक्षा में बाँटने के लिए कुछ न कुछ अवश्य होता है। शिक्षकों को उसकी उस प्रतिभा और आत्मविश्वास के विकास में योग देना चाहिए और धमकी भरी भाषा और प्रतिकूल शारीरिक भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

मूल्यों की शिक्षा का मतलब हमेशा से वांछनीय व्यवहार को प्रेरित करना रहा है। इसका मतलब 'अस्वीकृत' और 'अवांछनीय' व्यवहार और भावनाओं का दमन और खंडन भी रहा है। इस कारण विद्यार्थी अक्सर बिना किसी प्रतिबद्धता के अपनी सही भावना और विचार को छिपाकर बस ज़बानी तौर पर नैतिक मूल्यों की बात करने लगते हैं। अतः ज़रूरत बातचीत से हटकर अनुभवों और चिंतन-मनन तक जाने की है जहाँ नैतिक व्यवहार

के लिए कोई भी सरल प्रस्ताव या उपागम नहीं हो सकता बल्कि मानव व्यवहार और रुचि से संबंधित जटिल प्रयोजनों और नैतिक दुविधाओं पर विचार कर उन्हें समझा जाए।

शिक्षक खुद सुविचारित प्रयास कर सकते हैं कि पाठ्य सामग्री और बच्चों के विकास के स्तर के अनुरूप शांति से संबंधित मूल्यों को पठन-पाठन में शामिल कर लें और उन पर लगातार बल दें। उदाहरण के लिए, शिक्षक किसी पाठ में छिपे घटकों का उपयोग सकारात्मक भावों को जगाने के लिए, अनुभवों आदि के आधार पर शांति के मूल्यों को स्थापित करने के लिए, कर सकते हैं। प्रश्न, किस्सा-कहानी, खेलकूद, व्यावहारिक चर्चा, उदाहरणों, रूपकों, मूल्य स्पष्टीकरण के माध्यम से शांति की शिक्षा दी जा सकती है। नैतिक शिक्षा और आचरण व्यक्तिगत, सामाजिक, सामुदायिक और वैश्विक आयामों से जोड़कर सिखाए जा सकते हैं। एक शिक्षक, जो शांति के अध्ययन-अध्यापन की तैयारी कर चुका हो ऐसे अवसरों पर उनके पैमाने और अंतर्संबंधों के बारे में बता सकता है। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शांति की शिक्षा को वैकल्पिक विषय के रूप में शामिल किया जा सकता है।

3.9 आवास और सीखना

आवास वह स्थल होता है जहाँ किसी भी जाति को ऐसी परिस्थितियाँ मिलती हैं कि वह पनप पाए। सीखना समस्त पशु-जातियों की अत्यावश्यक क्षमता होती है। जानवर अपने आवास के लक्षणों के बारे में इन रहस्यों को सुलझाते हुए समझते-बूझते हैं कि उनको खाना कहाँ मिलेगा, कहाँ सामाजिक साथी मिलेंगे या कहाँ दुश्मनों से सामना होगा। अतः हमारे पूर्वजों के लिए ज्ञान की शुरुआत अपने आवास की खोज से शुरू हुई थी। लेकिन मानव ने प्रकृति पर अपना नियंत्रण बढ़ाया, उसने इस संसार को अधिक से अधिक अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया। परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य का अपने पर्यावरण पर नियंत्रण बढ़ता गया और वह दुनिया को अपने अनुकूल बनाता गया, वह ज्ञान के इस क्षेत्र से विमुख होता गया। आज ज्ञान का यह क्षेत्र इतना कम हो गया है कि औपचारिक शिक्षा विद्यार्थियों के आवास से पूर्णतः विमुख हो गई है। लेकिन जिस अप्रत्याशित गति से पर्यावरण का क्षरण हो रहा है हमने यह समझना शुरू कर दिया है कि अपने प्राकृतिक आवास की अच्छी तरह देखभाल ज़रूरी है। मानव जाति को इसलिए अपनी जड़ों को समझने की कोशिश में, अपने प्राकृतिक आवास से संगति बिठाने के क्रम में उसकी अच्छी तरह देखभाल की ज़रूरत है। अपनी विषयवस्तु और अभिप्राय में 'आवास एवं सीखना' का विषय पर्यावरण शिक्षा के समान होगा।

पर्यावरण संबंधी इन चिंताओं का बेहतर समाधान इस रूप में किया जा सकता है कि पर्यावरण शिक्षा को विभिन्न विषयों के साथ जोड़ा जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि उससे जुड़ी प्रासंगिक गतिविधियों को पर्याप्त समय मिले। यह दृष्टिकोण सार्थक तरीके से भौतिकी, गणित, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति शास्त्र, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, कला, संगीत इत्यादि के पाठ्यक्रमों की विषयवस्तु से जोड़ा जा सकता है। जीवन स्थितियों से जुड़ी गतिविधियाँ विद्यार्थियों की रुचि को बाँधे रखने का सार्थक माध्यम बन जाती हैं। उदाहरण के लिए, वर्षा अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग ढंग से होती है। उसकी विविधता के आंकड़े उपलब्ध हैं जिनको भौतिकी और गणित में कई रोचक गतिविधियों को बढ़ावा देने में उपयोग में लाया जा सकता है। भौतिकी में ऐसे सामान्य प्रयोग करवाए जा सकते हैं जिनमें असमान भूभागों पर द्रव्यों के बहाव के प्रतिमानों को समझ पाएँ या इस बात का प्रदर्शन/निरूपण हो पाए कि हवा ऊपर उठने पर कैसे ठंडी होती है और वर्षा हो जाती है जबकि

नीचे आने से विपरीत प्रभाव होते हैं। गणित में, लंबे समय के, मान लीजिए 50 सालों के आंकड़ों का अध्ययन कर वर्षा में कमी की जानकारी इकट्ठा की जा सकती है और यह आंकड़ा रखने संबंधी परियोजना का आधार बन सकता है। इसी प्रकार कचरा प्रबंधन प्लांट को सार्थक तरीके से रसायनशास्त्र से जोड़ा जा सकता है। साथ ही, स्कूल, पंचायत, नगरपालिकाओं और नगर निगमों के साथ मिलकर जैव-विविधता और उससे जुड़े विषयों का अभिलेखन कर सकते हैं। स्कूल जीव विज्ञान में इस तरह की परियोजना ले सकते हैं कि औषधीय पौधों की उपलब्धता कहाँ है और उनकी क्या उपयोगिता है या जल में खतरे में पड़ी मछली की प्रजातियों का संरक्षण कैसे किया जा सकता है इत्यादि। विभिन्न कला माध्यमों, संगीत, नृत्य और शिल्पकला के माध्यम से लोग पर्यावरण और उससे जुड़े मुद्दों (जानवर, जंगल, नदी, पौधे, इत्यादि) को अभिव्यक्ति देते हैं। इस प्रकार की समझ को अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के जीवन से भी जोड़ा जाए, क्योंकि वे अपनी जीविका के लिए अक्सर प्राकृतिक जैव-विविधता पर निर्भर होते हैं। इस तरह के ज्ञान का अभिलेखन, जैव-विविधता के जन-रजिस्टर की तैयारी का हिस्सा है और विद्यार्थियों को इस तरह के रजिस्टर बनाने की परियोजनाओं में लाभदायक रूप से जोड़ा जा सकता है। स्वास्थ्य शिक्षा के लिए जंगली पौधों के पोषक तत्व, जो आदिवासियों को पूरक पोषण देते हैं, से संबंधित विषयों पर परियोजनाएँ तैयार की जा सकती हैं जो स्वास्थ्य शिक्षा के उपयोगी घटक बन सकते हैं। इसी प्रकार, स्थानीय पर्यावरण का नक्शा तैयार करना, पर्यावरण इतिहास को दर्ज करना तथा पर्यावरण से जुड़े राजनीतिक मुद्दों को भूगोल, इतिहास और राजनीति विज्ञान विषय की परियोजना से जोड़ा जा सकता है। स्थानीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जल से जुड़े विवादों को लेकर अनेक प्रकार की गतिविधियाँ एवं परियोजनाएँ आरम्भ की जा सकती हैं।

3.10 अध्ययन और आकलन की योजनाएँ

स्कूल का मतलब कमोबेश पूरे भारत में कक्षा 1 से 10 तक की शिक्षा से होता है, कुछ राज्यों में यह बारहवीं तक होता है, जबकि अन्य राज्यों में ग्यारहवीं और बारहवीं को विश्वविद्यालय-पूर्व अथवा जूनियर कॉलेज शिक्षा के रूप में जाना जाता है। कुछ स्कूलों में 2-3 साल शाला-पूर्व कक्षाएँ भी लगती हैं। स्कूली-शिक्षा का इन चार भागों में विभाजन प्रशासनिक सहूलियत भर नहीं है बल्कि उससे कहीं अधिक है। पाठ्यचर्या निर्माण और शिक्षक की तैयारी के लिहाज से इन चरणों का विकासात्मक औचित्य है। स्तरवार नज़रिए से अगर देखें तो पाठ्यचर्या की योजना और स्कूल की व्यवस्था उन समस्याओं पर काबू पाने में सहायक होते हैं जो कक्षाओं के एकल-श्रेणी होने के मानक से उपजती हैं। इस मानक में बच्चों के उम्र-आधारित समूहीकरण और कक्षा के हिसाब से सीखने-सिखाने के उद्देश्यों का सख्ती से पालन होता है। एक या दो शिक्षकों वाले प्राथमिक स्कूलों की पुनर्कल्पना एक ऐसे शिक्षा समूह के रूप में की जा सकती है, जिसकी विविध अभिरुचियाँ और शैक्षिक आवश्यकताएँ हों बजाए बहुस्तरीय कक्षाओं के जिनके लिए समय-प्रबंधन की तकनीकों की ज़रूरत होती है। बच्चों का आकलन, उन्होंने क्या ज्ञान अर्जित किया- स्कूल में लंबा समय बिताने के बाद होना चाहिए, न कि सालाना आधार पर। इससे बच्चों की सीखने की गति के प्रति अधिक सम्मान का भाव पैदा होगा। न्यूनतम अधिगम स्तर जैसी योजनाओं ने न केवल साल के अंत में आने वाले नतीजों के सख्त पालन पर ज़ोर दिया बल्कि नतीजों को पाठ आधरित बना और संकीर्ण बना दिया हैं। पाठ्यचर्या की विशेषताओं व सरोकारों का

खुलासा करते समय अगर शिक्षण विधि और आकलन को विभिन्न चरणों में देखा जाए तो पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों व सीखने की सामग्री के साथ जोड़ा जा सकता है तथा शिक्षक बच्चों के विकास की ऐसी योजना बना सकते हैं जो क्रमशः उनकी क्षमताओं, दक्षताओं व अवधारणों को पुख्ता बनाएँ।

3.10.1 प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा

प्रारंभिक बाल्यावस्था स्तर, छः से आठ साल तक की उम्र का समय, बहुत ही संवेदनशील और निर्णायक होता है जब जीवन भर के विकास के आधार और समस्त संभावनाओं के द्वार खुलते हैं। जैसा कि शोध से पता चलता है कि मस्तिष्क की संभावनाओं के पूर्ण विकास के लिहाज से ही इसे संवेदनशील कहा जाता है। बाद की प्रवृत्तियों, मूल्यों और ज्ञान की आकांक्षा की नींव भी इसी चरण में पड़ती है। अगर इस चरण में सहयोग न मिले या उपेक्षा बरती जाए तो इसके नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं। कई बार यह परिणाम सुधारे भी नहीं जा सकते। शाला-पूर्व शिक्षा और देखभाल की यह मांग है कि छोटे-छोटे बच्चों की उचित देखभाल हो, उनके सर्वांगीण विकास के लिए पर्याप्त अवसर और अनुभव दिए जाएँ। सर्वांगीण विकास में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक विकास एवं विद्यालय के लिए तैयारी शामिल है। एक समग्र और सर्वांगीण परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम पाते हैं कि बच्चों की स्वास्थ्य एवं पोषण की ज़रूरतें उनके मनोवैज्ञानिक-सामाजिक और शैक्षणिक विकास से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा एवं देखभाल की पाठ्यचर्या के ढाँचे और शिक्षाशास्त्र को इस सर्वांगीण परिप्रेक्ष्य पर आधरित होने की ज़रूरत है जिसमें विकास के विभिन्न क्षेत्रों में, प्रत्येक स्तर पर बच्चों के लक्षणों और अनुभव के अर्थों में उनकी अधिगम की ज़रूरतों को ध्यान में रखा जाए।

यह एक मानी हुई बात है कि बच्चों में सीखने और अपने आसपास की दुनिया को समझने की स्वाभाविक इच्छा होती है। इसलिए शुरुआती वर्षों में अधिगम बच्चों की अभिरुचियों और प्राथमिकताओं के मुताबिक होना चाहिए और बच्चों के अनुभवों में संदर्भित होना चाहिए, न कि औपचारिक रूप से बनाया हुआ। बच्चों को समर्थ बनाने वाला माहौल वह होता है जो बच्चों को विविध प्रकार के अनुभवों की दिशा में प्रेरित कर सके, जो बच्चों को कुछ करने, खुलकर अपने-आपको अभिव्यक्त करने के अवसर प्रदान करे। साथ ही वह सामाजिक संबंधों में रचा बसा हो जिससे उन्हें स्नेह, संरक्षण और विश्वास की अनुभूति हो। खेलकूद, संगीत, गीत, कलाओं तथा अन्य गतिविधियाँ, जो स्थानीय सामग्री, कला और ज्ञान पर आधारित हों, साथ ही, बोलने, स्वयं को अभिव्यक्त करने, अनौपचारिक संपर्क-संवाद के अवसर आदि इस चरण में ज्ञान के आवश्यक अंग हैं। यह आवश्यक है कि शुरुआती वर्षों की शिक्षा में वही भाषा प्रयोग में लाई जाए जिससे बच्चा अपने परिवेश में परिचित हो, वहीं अगर कक्षा बहुभाषी और अनौपचारिक हो तो बच्चों की दूसरी भाषा (अंग्रेज़ी) की जल्द शुरुआत से बच्चे असहज नहीं होते। यह मदद कक्षा 1 से ही शुरू होने वाली उस भाषा को समझने में भी मिलेगी जिसके माध्यम से पढ़ाई होती है क्योंकि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के कार्य-क्षेत्र में जो बच्चे आते हैं उनका समूह बड़ा ही विषमजातीय होता है जिसमें शिशुओं से लेकर नर्सरी के विद्यार्थी होते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि उनके लिए आयोजित की गई गतिविधियाँ और अनुभव विकासात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त हों।

बच्चों की असमर्थताओं की जल्द से जल्द की गई पहचान और उपयुक्त प्रेरणा देने से अपंगता से होने वाले अहित को रोकने में काफी मदद मिल सकती है। इस संबंध में सचेत रहने की आवश्यकता है कि इस स्तर पर बच्चों पर जबर्दस्ती लिखने,

पढ़ने और अंकगणित सीखने का दबाव नहीं बनाया जाए, न ही औपचारिक शिक्षा जल्द शुरू की जाए। स्कूल-पूर्व शिक्षा को प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन के लिए प्रशिक्षण केंद्र के रूप में नहीं बरता जाना चाहिए। वास्तव में, सुझाव यह है कि शाला-पूर्व शिक्षा के अंतर्गत 0-8 साल के बच्चों को रखा जाना चाहिए (ताकि आरंभिक प्राथमिक शिक्षा भी इसके अंतर्गत आ सके)। यह इस समझ से प्रस्तावित किया जा रहा है कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा और उसकी पद्धतियों-संबंधी समग्र दृष्टिकोण अपनाने से (सर्वांगीण और समेकित विकास, गतिविधि-आधारित शिक्षण, लिखने से पहले भाषा को सुनना और बोलना, घर और स्कूल के बीच सततता और प्रासंगिकता) बच्चों के बचपन के समस्त अधिगमात्मक अनुभवों में मदद मिलेगी और प्राथमिक शिक्षा के चरण की ओर सहजता से बढ़ा जा सकेगा।

प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के कार्यक्रमों में बाहुलता दिखती है, जिसमें सरकारी, गैर-सरकारी (स्वयंसेवी क्षेत्र) और निजी संस्थाएँ विविध तरह की सेवाएँ दे रही हैं। हालांकि इन कार्यक्रमों की पहुँच काफी संकीर्ण है और दी जाने वाली सेवाओं में गुणवत्ता की नज़र से बहुत भिन्नता है और ज़्यादातर वह निम्न कोटि की ही हैं। अधिक बच्चों को, विशेषकर गरीब और समाज के हाशिए पर रहने वाले बच्चों को प्रारंभिक देखभाल के दायरे में शामिल नहीं किया जाता और अक्सर उन्हें उनके हाल पर ही छोड़ दिया जाता है। शाला-पूर्व के कार्यक्रमों में विभिन्नता है, कहीं पर बच्चों पर बड़ी उबाऊ और नीरस दिनचर्या थोप दी जाती है, तो कहीं औपचारिक, व्यवस्थित शिक्षा में झोंक दिया जाता है, जो अक्सर अंग्रेज़ी में होती है और जिसमें बच्चों की परीक्षाएँ ली जाती हैं। गृहकार्य मिलता है और खेलने का अधिकार ही उनसे छीन लिया जाता है। यह चलन अनावश्यक और नुकसानदेह है जो अभिभावकों की दिग्भ्रमित आकांक्षाओं तथा स्कूल-पूर्व शिक्षा के बढ़ते व्यवसायीकरण का परिणाम है, जो बच्चों के विकास और सीखने की इच्छा के लिए बहुत ही हानिकर है। इस प्रकार की अधिकांश समस्याएँ इसीलिए पैदा होती हैं क्योंकि शिक्षा की मुख्यधारा में प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा आज भी 'अमान्य' ही है। ध्रुवीकृत व्यवस्था हमारे समाज के विभिन्न विभेदों को उजागर भी करती है और उनको बढ़ावा भी देती है। समाज में फैले गहरे लिंग भेद और व्यापक पितृसत्तात्मक मूल्यों के कारण शिशु-सदन और डे-केयर केंद्रों की आवश्यकताओं की पहचान नहीं हो सकी है, विशेषकर गरीब ग्रामीण और शहरी कामकाजी औरतों के मामले में; इस उपेक्षा का लड़कियों की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के अच्छे कार्यक्रम का असर बच्चों के सर्वांगीण विकास पर पड़ता है। यह अपने आप में इस माँग का पर्याप्त कारण बनता है कि सभी बच्चों को आरंभिक शिक्षण और लालन-पालन की आवश्यकता है। इसीलिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि 0-6 वर्ष के बच्चों को संविधान की धारा 21 के प्रावधानों से बाहर रखा गया है। साथ ही, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का सीधा संबंध बच्चों के स्कूल में नामांकन और शिक्षण के परिणामों से है। सभी बच्चों को एक समान प्रारंभिक बाल्यावस्था-शिक्षा उपलब्ध कराने के लिहाज से केवल यही आवश्यक नहीं है कि इस उद्देश्य के लिए धन आवंटित किया जाए, बल्कि विभिन्न प्रकार की रणनीतियाँ बनाकर गुणवत्ता के पांच बुनियादी आयामों को सुनिश्चित किया जाए- विकासमूलक दृष्टिकोण से उपयुक्त पाठ्यचर्या, प्रशिक्षित और उपयुक्त वेतन प्राप्त शिक्षक, उपयुक्त शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात, बच्चों की आवश्यकताओं के अनुकूल साधन-संसाधन तथा ऐसी निरीक्षण विधि जो उत्साहवर्धक हो। जहाँ विकेंद्रीकरण, लचीलेपन और संदर्भपरकता की आवश्यकता है, वहीं इस बात की भी ज़रूरत है कि उपयुक्त

मानक और निर्देशक सिद्धांत विकसित किए जाएँ और एक नियामक ढाँचा लागू हो जिससे बच्चों के विकास में कोई भी समझौता न करना पड़े। सभी स्तरों पर विविध भूमिकाओं के लिहाज से संसाधन तैयार किए जाने की आवश्यकता है तथा यह भी सुनिश्चित करने की ज़रूरत है कि इस दिशा में कार्य करने वालों को उचित भुगतान हो।

3.10.2 आरंभिक शिक्षा

कक्षा 1 से 8 तक की आरंभिक शिक्षा को आजकल अनिवार्य शिक्षा की अवधि के रूप में स्वीकार लिया गया है क्योंकि संवैधानिक संशोधन ने शिक्षा को बुनियादी अधिकार में शामिल कर दिया है। इस चरण के शुरुआत में बच्चे का पढ़ने, लिखने और अंकगणित से औपचारिक परिचय होता है और इस चरण का अंत जैविक-भौतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों के औपचारिक परिचय से होता है। आठ सालों की यह अवधि वह समय है जब महत्त्वपूर्ण संज्ञानात्मक विकास होता है और विवेक को आकार मिलता है, सामाजिक कौशलों, और बुद्धि एवं काम के लिए ज़रूरी कौशलों और अभिवृत्तियों का भी विकास होता है।

जैसे-जैसे सार्वजनीन शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास प्रगाढ़ हो रहे हैं वैसे-वैसे आरंभिक विद्यालयों की ज़िम्मेदारी उन स्कूल जाने वाली उम्र के बच्चों के प्रति बढ़ रही है जो विभिन्न पृष्ठभूमियों से आते हैं। अतः यह ज़रूरी है कि मानकों से समझौता किए बिना इस चरण की शिक्षा विविधता व लचीलापन लिए हुए हो। वह समेकित प्रकृति की हो, जो बच्चों को भाषा और अभिव्यक्ति में सक्षम बनाए। उनमें एक अध्ययनकर्ता होने का आत्मविश्वास जगाए। यह आत्मविश्वास और अभिव्यक्ति स्कूल में और उसके बाहर दोनों जगह के लिए हो।

स्कूल का पहला सरोकार बच्चे की भाषा क्षमता के विकास से है : अभिव्यक्ति और साक्षरता संबंधी क्षमता, भाषा को रचने, सोचने और दूसरों से संप्रेषण में उपयोग की क्षमता के मुद्दे इसमें शामिल हैं। इस बात पर विशेष बल दिया जाना चाहिए कि उन विद्यार्थियों के लिए अधिक से अधिक अवसर हों जो अपनी मातृभाषा के माध्यम से पढ़ना चाहते हैं, इसमें आदिवासियों की भाषाएँ और छोटे भाषा-समूहों की भाषाएँ भी शामिल हैं। चाहे विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम हो फिर भी अपनी मातृभाषा में पढ़ने के मौके होने चाहिए। स्कूली व्यवस्था को इन विकल्पों को बढ़ावा देने, पोषण देने की क्षमता एवं कार्यान्वित करने की कार्यप्रणाली अच्छी शिक्षा देने की क्षमता बढ़ाएँगें। कार्य प्रणाली ऐसी हो जिससे भविष्य के विकल्प खुले रहें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बहुत ही सृजनात्मक और संगठित प्रयास करने की ज़रूरत है जिससे भारतीयों की बहु-भाषिक मेधा बनी रहे और त्रि-भाषीय फार्मूला लागू किया जा सके। इस दौरान अंग्रेज़ी भी पढ़ाई जा सकती है, लेकिन भारतीय भाषाओं की कीमत पर नहीं।

गणितीय चिंतन का विकास, जो गिनती से शुरू होकर अमूर्त विचारों में दक्षता और उनका आनंद उठाने की क्षमता की ओर होता है, उसको ठोस अनुभवों और परिचलनों के साथ काम के अनुभवों के सहारे की ज़रूरत है। इन्हीं शुरू के सालों में कक्षा 4 तक भाषा और गणित में अधिगम की कठिनाइयों को पहचानने और उपचारी काम को संबोधित करने की ज़रूरत है।

इसी प्रकार के ठोस अनुभव पर्यावरण के एकीकृत अध्ययन के लिए भी आवश्यक हैं, जिससे बच्चे का अपना सहजबोध स्कूली ज्ञान के साथ सम्मिलित हो पाएगा। समय के साथ यह अध्ययन एक विषयात्मक उपागम की ओर बढ़ेगा, लेकिन उसमें अध्ययन के समेकित मुद्दे हों और अवधारणाओं के विकास के मौके निहित हों और विषय की कार्य प्रणाली और शब्दावली को सीखने के मौके भी निहित हों।

केवल सौंदर्यबोध के विकास के लिए ही नहीं बल्कि सामग्री के परिचालन को सीखने के लिए

और काम के लिए ज़रूरी अभिवृत्तियों और कौशलों के विकास के लिए भी कला और शिल्प का अध्ययन बहुत ही ज़रूरी है। यह ज़रूरी है कि पाठ्यचर्या बच्चों को जीवन के व्यावहारिक कौशल सीखने के और विविध प्रकार के कार्यानुभवों के अवसर दे। खेलकूद के माध्यम से शारीरिक विकास भी आवश्यक है। स्कूल की पढ़ाई के इस चरण में कई तरह की गतिविधियों की ज़रूरत है; जैसे – सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेना, कार्यक्रम आयोजित करना, स्कूल के बाहर की यात्रा आयोजित करना, सामाजिक और भावनात्मक रूप से एक सृजनात्मक, दूसरों के प्रति संवेदनशील और आत्मविश्वासी इनसान बनने के मौके देना और ज़िम्मेदारी और पहल के योग्य बनने के अवसर देना। ऐसे शिक्षक जिनकी पृष्ठभूमि 'परामर्श और सहयोग' के क्षेत्र में रही है वे बच्चों के विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली गतिविधियाँ तैयार कर सकते हैं, जिससे बच्चों में वांछित सकारात्मक वृत्तियों और स्वयं एवं काम के प्रति वांछित अनुभूतियों की नींव रखी जा सके। वे समाज के विभिन्न स्तरों के बच्चों को आवश्यक सहयोग और परामर्श भी उपलब्ध करा सकते हैं, जिससे उनकी आरंभिक स्कूली पढ़ाई सतत चलती रहे। पाठ्यचर्या का रुख प्रक्रिया-आधारित हो न कि परिणाम-आधारित। विकास के ये सभी अवसर सभी विद्यार्थियों को उपलब्ध कराए जाने चाहिए। इसका ध्यान रखा जाना चाहिए कि पाठ्यचर्या प्राथमिकताओं, अभिरुचि और विभिन्न समुदायों के सामर्थ्य को लेकर रूढ़ियों को बढ़ावा देने वाली न हो। इस संदर्भ में, काम के नाम पर धीरे-धीरे व्यावसायिक शिक्षा को अपनाया जाना समावेशी पाठ्यचर्या का एक महत्त्वपूर्ण पहलू हो सकता है।

3.10.3 माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक स्कूल शारीरिक बदलावों और अस्मिता विकास का समय होता है। यह गहन ऊर्जा और जीवंतता का दौर भी होता है। इसी दौरान अमूर्त का उपयोग करके तर्क देने की क्षमता उभरती है जिससे बच्चों में वर्तमान और मौजूदा चीज़ों से आगे बढ़ कर उन चीज़ों से समझ के साथ जुड़ने की क्षमता भी आती है जो सामने नहीं होतीं। इस जुड़ाव में ज्ञान सृजन की क्षमता भी शामिल होती है। इसी अवधि में समाज के संदर्भ में स्वयं की विवेचनात्मक समझ भी उभरती है।

इस स्तर पर पाठ्यक्रम का लक्ष्य विषयों के बारे में जागरूकता बढ़ाना होता है और विद्यार्थियों का उन विषयों के अध्ययन की संभावनाओं और अवसरों से परिचय करवाना भी होता है। इस तरह की गतिविधि से वे अपनी रुचियों और क्षमताओं को पहचान पाते हैं और यह विचार बनाने लगते हैं कि वे आगे चल कर किस तरह का काम करना चाहेंगे और उससे संबंधित किस विषय का अध्ययन करना चाहेंगे। प्रशिक्षित शिक्षकों एवं व्यावसायिक परामर्शदाताओं की मदद से इस तरह की आवश्यकताएँ व्यवस्थित निर्देशन एवं परामर्श संबंधी क्रियाओं द्वारा प्रभावी ढंग से पूरी की जा सकती हैं। बहुत सारे बच्चों के लिए यह समापक चरण भी होता है जिसके बाद वे स्कूल छोड़ देते हैं और कार्य के लिए उत्पादी कौशलों के विकास में जुड़ जाते हैं। सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण जिन बच्चों के लिए यह चरण समापक हो जाता है उन्हें सृजनात्मक और भावी कार्य कौशलों को सीखने के मौकों की ज़रूरत होती है जबकि पूरी व्यवस्था माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीनीकरण की ओर अग्रसर होती है। अतः यहाँ पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की सुविधा आवश्यक है, और इस दिशा में संगठित प्रयास करने की ज़रूरत है ताकि सभी विद्यार्थियों को यह सुविधा मिले।

विद्यार्थी दो साल बोर्ड परीक्षा के प्रेत से ग्रसित रहते हैं क्योंकि इन परीक्षाओं के प्राप्तांक भविष्य के विकल्पों को निर्धारित करते हैं। स्कूल अक्सर बड़े गर्व से घोषणा करते हैं कि उनके यहाँ दसवीं

कक्षा के पहले सत्र की समाप्ति तक पाठ्यक्रम पूरा हो जाता है और बाकी के दो सत्रों में दोहराने का काम चलता है ताकि विद्यार्थी परीक्षा के लिए पूरी तरह तैयार हो सकें। इस चरण में नवीं कक्षा और बाद में ग्यारहवीं कक्षा को भी इसी कारण से पूरी तरह से कुर्बान कर दिया जाता है। परीक्षा के इस हौव्वे और अधिगम पर इसके घातक प्रभावों पर दुबारा विचार करने और उसे चुनौती देने की ज़रूरत है। क्या वास्तव में बच्चों के जीवन के सबसे उत्पादी समय में से एक साल इतने गैर उत्पादी काम में बर्बाद करना उचित है? क्या यह संभव नहीं है कि पूरे साल संतुलित ढंग से शिक्षा दी जाए, जिससे परीक्षा की भी शायद बेहतर तैयारी हो पाए ? परीक्षा के नाम पर पाठ्यचर्या में खेलकूद और कला के विषयों से भी समझौता किया जाता है। यह आवश्यक है कि ज्ञान के इन क्षेत्रों को बचाया जाए, और इस संबंध में गंभीर प्रयास किए जाएँ ताकि इस अवधि के दौरान कामकाज के सार्थक प्रयास संस्थागत हो जाएँ।

देश के ज्यादातर परीक्षा-बोर्ड इस अवधि में किसी वैकल्पिक अध्ययन का अवसर नहीं देते हैंः दो भाषाएँ (जिनमें एक अंग्रेज़ी होती है), गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान परीक्षोपयोगी विषय हैं। इस समूह में गणित और अंग्रेज़ी का पाठ्यक्रम, जो विद्यार्थियों के फेल होने का बड़ा कारण होता है, उसको फिर से निर्मित करने की ज़रूरत है। परीक्षा में 'पास-फेल' की अवधारणा को भी बदलने की ज़रूरत है और 'उत्तीर्णांक' के मायनों की समीक्षा भी आवश्यक है। इससे जुड़े मुद्दों की चर्चा अध्याय 5 में व्यवस्थागत सुधार के खंड में की गई है।

कुछ परीक्षा-बोर्ड विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र, संगीत और पाक कला में से एक विकल्प चुनने का अवसर देते हैं। इस प्रकार के विकल्प बढ़ाए जाने चाहिए और अधिक पारंपरिक विषयों की जगह इस तरह के विकल्पों को शामिल करने की संभावनाओं पर विचार करना चाहिए। व्यावसायिक विकल्प भी शुरू किए जा सकते हैं। स्थानीय समुदाय के उत्पादक कार्य संसार में से इस तरह के कई व्यावसायिक विकल्प उभर कर आ सकते हैं। उदाहरण के लिए गैरेज में गाड़ियों की देखभाल, दर्जी का काम, चिकित्सा से जुड़ी सेवाओं को शामिल करके कई सार्थक वैकल्पिक विषय बनाए जा सकते हैं। स्कूल बोर्ड इस तरह के अधिगम को प्रामाणिक करार दे सकते हैं ताकि उन असंख्य स्थानों को मान्यता मिल सके जहाँ बच्चे स्कूल के बाहर सीखते हैं। हमारे देश में, अनेक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में गुणवत्ता का ह्रास हुआ है और इसीलिए वे विद्यार्थियों को सार्थक काम से संबंधित ज्ञान और कौशल देने में असमर्थ रहे हैं। कई मामलों में तो यह एक घिसे-पिटे प्रमाण-पत्र देने वाले कार्यक्रम की तरह चलते रहते हैं जिनमें काम करना सीखने और काम पाना सीखने में कोई अंतर नहीं किया जाता।

3.10.4 उच्च माध्यमिक शिक्षा

उच्च माध्यमिक स्कूल में अकादमिक और व्यावसायिक विषयों की स्थिति की समीक्षा करने की आवश्यकता है। यह समीक्षा इस बात को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए कि बोर्ड की परीक्षाओं और प्रवेश परीक्षाओं को लेकर आज भी उतनी ही तन्मयता है और इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि 'अकादमिक विषय' कहे जाने वाले हिस्सों को ज्यादा तरजीह दी जाती है और 'व्यावसायिक विषयों' का तो विकास तक नहीं हो पा रहा है। दो सालों की यह अवधि वह समय है जब विद्यार्थी अपनी रुचियों, क्षमताओं और भविष्य की ज़रूरतों के हिसाब से विकल्प चुनते हैं।

अपनी रुचि और अपने भविष्य में पेशे के आधार पर वैकल्पिक विषयों के अध्ययन की संभावना जिससे विद्यार्थी ज्ञान के भिन्न क्षेत्रों को समझ पाएँ इस चरण की शिक्षा में अंतर्निहित है।

विषयों की गहराई में उतरना और समस्याओं और मुद्दों को एक समृद्ध अंतरअनुशासनिक परिप्रेक्ष्य में देख पाना भी इस स्तर पर संभव है। यह ज़रूरी है कि चुने गए विषयों के बीच और उनके बाहर भी इस तरह की जाँच-पड़ताल की अनुमति हो।

ज़्यादातर परीक्षा-बोर्ड अनिवार्य भाषायी विषयों के अलावा विषयों में कई तरह के विकल्प बच्चों को देते हैं। परन्तु वे औपचारिक या अनौपचारिक प्रतिबंध चिंताजनक हैं जो विद्यार्थियों के विषयों के चुनाव को सीमित कर देते हैं। कई परीक्षा-बोर्ड विषयों को विज्ञान के विषय, वाणिज्य के विषय और कला के विषय के रूप में संयोजित कर देते हैं और इसी रूप में विषयों की उपलब्धता पर नियंत्रण रखते हैं। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न विषय चुनने की संभावना पर रोक नहीं लगाता है, लेकिन कुछ समूहों की बढ़ती लोकप्रियता और विषयों के आपसी दर्जे को ध्यान में रखकर इनमें से कई विकल्प अब विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध नहीं हैं। साथ ही विश्वविद्यालयों को भी अपनी दाखिले की प्रक्रिया की समीक्षा करने की आवश्यकता है क्योंकि वहाँ प्रवेश बारहवीं स्तर पर पढ़े गए विषयों के आधार पर किए जाते हैं। परिणामस्वरूप, कई महत्वपूर्ण विषय और विषय सम्मिश्रण, उदाहरण के लिए भौतिकी, गणित, और दर्शन या साहित्य, जीवविज्ञान और इतिहास, विद्यार्थियों के लिए बंद हो गए हैं।

आजकल समय-सारणी और प्रचलित विषयों के तर्क के आधार पर स्कूलों में मेडिकल और इंजीनियरिंग के विषयों के अनूकूल कक्षाएँ चलाने का प्रचलन है । देश के कई भागों में जो विद्यार्थी कला और अन्य विषय पढ़ना चाहते हैं उनके पास चुनने के लिए बहुत ही कम विकल्प होते हैं। स्कूल भी विद्यार्थियों को गैर-पारंपरिक विषय-समूह चुनने से हतोत्साहित करते हैं, क्योंकि अगर विद्यार्थी ऐसे विकल्प चुन लें तो समय-सारणी बनाने में बहुत समस्या होती है। हमारा विश्वास है कि विद्यार्थियों के लिए सभी विकल्प उपलब्ध करवाना बहुत ही ज़रूरी है। अगर एक स्कूल में किसी विशेष विषय को पढ़ने में इच्छुक विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त नहीं है तो पड़ोस के दूसरे स्कूलों के साथ मिलकर कोई व्यवस्था की जा सकती है ताकि स्कूल मिलकर एक अध्यापक को उस विषय की ज़िम्मेदारी दे दें। इस तरह के संदर्भ व्यक्तियों/शिक्षकों की व्यवस्था खण्ड के स्तर पर उन विशेष विषयों को पढ़ाने के लिए की जा सकती है जो आमतौर पर स्कूलों में उपलब्ध नहीं होते। बोर्ड भी उन विषयों को प्रोत्साहन देने में सक्रिय भूमिका निभाने के बारे में सोच सकते हैं जिन पर आमतौर पर कम ध्यान दिया जाता है।

बारहवीं के स्तर पर जो विषय बच्चों के सामने रखे जाते हैं उन्हें उस अनुशासन में होने वाले विकास के प्रति सजग रहना चाहिए क्योंकि विकास की इस प्रक्रिया में ज्ञान के नए क्षेत्र तराशे जाते हैं । इसमें अनुशासनों की सीमाएँ हिलती हैं और बहु-अनुशासनिक अध्ययनों का विकास होता है। विभिन्न अनुशासनों के अंदर ही अध्ययन के कई क्षेत्र ऐसे हैं जिनका महत्व बढ़ रहा है। अगर विद्यार्थियों को ऐसे अध्ययन के क्षेत्रों में काम करने के मौके देने हों तो वैकल्पिक मॉड्यूल पेश करने के लिए पाठ्यक्रम भी बनाए जा सकते हैं, बजाय इसके कि सब कुछ पढ़ा दिया जाए या कोर्स में बहुत कुछ भर दिया जाए। उदाहरण के लिए, इतिहास में वैकल्पिक मॉड्यूल हो सकता है जिसमें 'पुरातत्व' या 'संसार का इतिहास' पढ़ने का विकल्प हो। इसी प्रकार भौतिकी में खगोल विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान या रॉकेट विज्ञान पढ़ने के विकल्प दिए जा सकते हैं ताकि अध्ययन के वैकल्पिक मॉड्यूल पाठ्यक्रम के तहत ही उपलब्ध हो जाएँ।

वृहत और विशाल पाठ्यक्रम को पूरा करने के दबाव में सीखने के कई पहलुओं का पूरी तरह

उपयोग नहीं किया जाता जिससे अधिगम का बहुत अहित होता है। प्रयोग करना, भ्रमण, संदर्भ सामग्री पढ़ना, परियोजनाएँ बनाना और प्रस्तुतियाँ करना भी सीखने के महत्वपूर्ण पहलू हैं। साधन युक्त प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय और कंप्यूटर की उपलब्धि भी बहुत ज़रूरी है और यह सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास करने की ज़रूरत है कि स्कूलों और जूनियर महाविद्यालयों में ऐसे संसाधन उपलब्ध हों।

व्यावसायिक शिक्षा मूलतः उन लोगों को ध्यान में रखकर शुरू की गई थी जो काम में उन लोगों से पहले लग जाते हैं जो अकादमिक परीक्षा पास करके कार्य क्षेत्र में आते है या आगे अध्ययन और अनुसंधान करते हैं। हम उत्पादक कार्य को ज्ञान अर्जन का शिक्षाशास्त्रीय माध्यम बनाने का सुझाव देते हैं ताकि शिक्षा के सभी स्तरों पर विद्यार्थियों में मूल्य तथा बहुविध कौशल विकसित हो सकें।

इस चरण की जो विकासमूलक प्रकृति है उसके लिए बच्चों को प्रशिक्षित व्यावसायिकों द्वारा मार्गदर्शन और परामर्श भी उपलब्ध होने चाहिए। स्वयं की समझ और कैरियर के विकल्प के लिए उन पेशेवरों का हस्तक्षेप बहुत ज़रूरी है। इसके अलावा, यह स्तर किशोरावस्था का भी होता है जिसमें परिवार, साथियों और स्कूली परिस्थितियों से सामंजस्य बिठाने की मांग के कारण कई व्यक्तिगत, सामाजिक और भावनात्मक संकट उभरते हैं। अगर स्कूल में इस तरह के संकट से निपटने के लिए पेशेवर सहायता उपलब्ध होगी तो किशोरों को बढ़ते हुए अकादमिक और सामाजिक दबाव से निपटने में मदद मिलेगी।

3.10.5 मुक्त विद्यालय और सेतु विद्यालय

राष्ट्रीय ओपन स्कूल के साथ शुरू होकर, कई राज्यों में काम कर रहे ओपन स्कूल बोर्ड विद्यार्थियों को कहीं अधिक और लचीले विकल्प दे पा रहे हैं। वे चुनाव के लिए विषयों की जो शृंखला प्रस्तुत करते हैं वह काफी विस्तृत है। परीक्षा लेने के लचीले तरीके और दूसरे बोर्ड से प्राप्तांकों के स्थानांतरण की सुविधा के कारण मुक्त विद्यालय की प्रमाण-पत्र देने की प्रक्रिया काफी मानवीय है। मुक्त विद्यालय की जानकारी और उसकी पहुंच का व्यापक रूप से प्रसार करना चाहिए। इसके साथ ही अन्य बोर्ड की परीक्षाओं से समतुल्यता को लेकर प्रचलित गलत धारणाओं को संबोधित करने के प्रयास भी करने चाहिए। दूसरे बोर्ड की परीक्षाओं से जोड़ते हुए अगर मुक्त विद्यालय की परीक्षाएँ भी अन्य बोर्ड परीक्षाओं की तिथियों के आस-पास ही आयोजित की जाएँ तो यह सुनिश्चित किया जा सकता है विद्यार्थियों का एक साल बर्बाद न हो।

देश के कई भागों में सेतु कार्यक्रम चलाए जाते हैं जिससे स्कूल से बाहर छूटे हुए बच्चे इन कार्यक्रमों में पढ़ पाएँ और अपनी उम्र के उपयुक्त

मूल्यांकन का यह प्रायोजन नहीं है :

- बच्चों को डर के दबाव में अध्ययन के लिए प्रेरित करना
- बच्चों को नाम देना जैसे 'धीमी गति से सीखने वाला', 'होशियार', 'समस्यात्मक विद्यार्थी'। ऐसे विभाजन अधिगम की सारी जिम्मेदारी विद्यार्थी पर डाल देते हैं और शिक्षाशास्त्र की भूमिका पर से ध्यान हटा देते हैं।
- उन बच्चों को पहचानना जिन्हें उपचारात्मक शिक्षण की आवश्यकता है (इसमें औपचारिक आकलन की प्रतीक्षा किए बिना शिक्षक, शिक्षण के दौरान ही शिक्षाशास्त्रीय योजना और व्यक्तिगत ध्यान देकर यह कर सकता है)।
- अधिगम की कठिनाइयों और समस्या क्षेत्रों की पहचान करना - अवधारणात्मक कठिनाइयों के व्यापक सूचक मूल्यांकन और परीक्षा से पता किए जा सकते हैं। निदान के लिए परीक्षा के विशेष औजारों की और प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है। यह ज़रूरत साक्षरता और संख्यनन के आधारभूत क्षेत्रों के लिए है न कि विषयों के लिए।

कक्षाओं में समेकित हो जाएँ। पाठ्यचर्या के इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए यह ज़रूरी होगा कि ये कार्यक्रम बहुत सोच समझ कर बनाए जाएँ। कम या निम्न कोटि का कार्यक्रम बच्चों के उस वंचन को और भी बदतर बना देगा जिसके वे पहले से ही शिकार हैं और जो वंचन उसके अधिकारों के प्रति घोर अवमानना दर्शाता है। ऐसे कार्यक्रमों की सफलता के लिए बहुत ज़रूरी है कि निरंतर शोध होते रहें और शिक्षाशास्त्र और वांछित सामग्री का विकास होता रहे। यह निहायत ही ज़रूरी है कि मानकों को सख्ती से लागू किया जाए, सुविधाओं का प्रावधान हो और एक बार स्कूल में नामांकन हो जाने के बाद इन बच्चों को निरंतर अकादमिक और सामाजिक समर्थन मिलता रहे।

3.11 आकलन और मूल्यांकन

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या की परिभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, अगर वे स्कूली शिक्षा प्रणाली में जडें जमाए मूल्यांकन और परीक्षा तंत्र के अवरोध से नहीं जूझ सकते। हमें परीक्षा के उन दुष्प्रभावों की चिंता है जो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने और बच्चों के लिए आनंददायी बनाने के प्रयासों पर पड़ते हैं। वर्तमान में बोर्ड की परीक्षाएँ स्कूली वर्षों में होने वाले हर आकलन और हर तरह के परीक्षण को नकारात्मक रूप से ही प्रभावित करती हैं। इसमें शाला पूर्व-स्तर में होने वाला आकलन और परीक्षण भी शामिल है।

एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि से फायदा हो सकता है। यह भाग मूल्यांकन और आकलन को संबोधित करते हुए शुरू होता है क्योंकि ये सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के लिए पाठ्यचर्या के भाग की तरह प्रासंगिक होते हैं। परीक्षा तंत्र और खासकर बोर्ड की परीक्षाओं से जुड़े मुद्दों को अध्याय 5 में अलग से संबोधित किया गया है।

3.11.1 आकलन का उद्देश्य

शिक्षा का सरोकार एक सार्थक व उत्पादक जीवन की तैयारी से होता है और मूल्यांकन आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि देने का तरीका होना चाहिए। यह प्रतिपुष्टि इस बात की होती है कि हम ऐसी शिक्षा लागू करने में किस हद तक सफलता प्राप्त कर पाएँ। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो वर्तमान में चल रही मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ जो केवल कुछ ही योग्यताओं को मापती और आकलित करती हैं बिलकुल ही अपर्याप्त हैं और शिक्षा के उद्देश्यों की ओर प्रगति की संपूर्ण तस्वीर नहीं खींचती हैं।

लेकिन मूल्यांकन का यह सीमित प्रायोजन भी, अकादमिक और शैक्षिक विकास पर प्रतिपुष्टि देने वाला, तभी बन सकता है जब शिक्षक पढ़ाने से पहले ही न केवल आकलन के तरीकों की तैयारी करें बल्कि मूल्यांकन के मानकों और उसके लिए प्रयुक्त होने वाले औजारों की भी तैयारी करें। विद्यार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता की जाँच के अलावा एक अध्यापक को विभिन्न विषयों में उनकी उपलब्धि की जानकारी इकट्ठा कर, उसका विश्लेषण कर और उसकी व्याख्या करनी होगी। तभी अध्यापक विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों के अधिगम की सीमा की एक समझ बना पाएँगे। आकलन का प्रायोजन निश्चय ही सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं एवं सामग्री का सुधार करना है और उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना है जो स्कूल के विभिन्न चरणों के लिए तय किए गए हैं। यह पुनर्विचार और सुधार इस आधार पर किया जा सकता है कि शिक्षार्थियों की क्षमता किस हद तक विकसित हुई। यह कहने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि यहाँ इस आकलन का मतलब विद्यार्थियों का नियमित परीक्षण कतई नहीं है। बल्कि, दैनिक गतिविधियाँ और अभ्यास के उपयोग से अधिगम का बहुत ही अच्छा आकलन हो सकता है।

सुनियोजित आकलन और नियमित प्रगति रपट शिक्षार्थियों को उनके काम की प्रतिपुष्टि देते हैं और साथ ही वे मानक भी स्थापित करते हैं जिनको पाने के लिए विद्यार्थी प्रयासरत रहते हैं। वे अभिभावकों को उनके बच्चों के अधिगम की गुणवत्ता और उनके विकास के बारे में भी जानकारी देते हैं। ऐसा आकलन प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देने का तरीका बिलकुल नहीं है; अगर कोई शिक्षा में गुणवत्ता चाहता है तो बच्चों का विभाजन कर उन्हें ऐसी श्रेणियों में डालना जिससे उनमें हीन भावना आ जाए तो बिलकुल नहीं होना चाहिए। अंतिम बिंदु है कि विश्वसनीय आकलन एक रपट देता है, या अध्यापन के एक कोर्स के खत्म होने का प्रमाण देता है या जिससे दूसरे स्कूलों, शैक्षिक संस्थानों, समुदाय और भावी मालिकों (रोज़गार देने वालों) को अधिगम की गुणवत्ता और सीमा के बारे में जानकारी मिल जाती है।

दक्षताएँ

दक्षताएँ शिक्षण और उससे संबंधित आकलन का ध्यान पाठ्यपुस्तक एवं तथ्ययुक्त विषयवस्तु से दूर ले जाने का एक प्रयास है। परन्तु अधिगम के न्यूनतम स्तर के उपागम में दक्षताओं को विस्तृत उप-दक्षताओं और उप-कौशलों में तोड़ा गया है, यह मानकर कि इनका कुल योग दक्षता है। परन्तु अक्सर व्यवहार और प्रस्तुति पर ध्यान देने से अवधारणाओं के लिए तो जगह ही नहीं बचती। उप-कौशलों के इस तार्किक, लेकिन यांत्रिक सूचीकरण से और उनकी उपलब्धि के लिए बनाई गई सख्त समय-सारणी से, कहीं भी न यह झलकता है कि अधिगम एवं दक्षताओं के उपयोग में खुद में ही लचीलापन हो सकता है, और न ही यह झलकता है कि जिस चक्र में दक्षताएं सीखी जाती हैं, ज़रूरी नहीं है कि वे निर्धारित समय और गति के अनुसार से ही सीखी जाएंगी। यह सरोकार भी कहीं प्रतिबिंबित नहीं होता कि समग्र, दरअसल विभिन्न भागों के जोड़ से ज्यादा भी हो सकता है।

इस विस्तृत सूची के लिए अधिगम और परीक्षण के विषयों की सूची बनाना और पूर्व निर्धारित अधिगम के परिणामों के लिए पढ़ाना बिलकुल ही अव्यावहारिक है और शिक्षाशास्त्रीय नज़र से अविश्वसनीय भी है।

यह धारणा प्रचलित है कि मूल्यांकन से उन ज़रूरतों को पहचानने में मदद मिलती है, जिन ज़रूरतों को उपचारात्मक शिक्षण से पूरा किया जाता है। इस धारणा ने पाठ्यचर्या की योजना बनाने में बड़ी समस्याएँ पैदा की हैं। इस 'उपचारात्मक' शब्द को उन विशिष्ट/विशेष कार्यक्रमों तक सीमित रखने की ज़रूरत है जो उन बच्चों की क्षमता विकास में मदद करते हैं जिनको पठन/साक्षरता (पठन में असफलता जिससे बाद में बोध पर फर्क पड़ता है) या अंकज्ञान (खासकर गणित के संकेतों वाले पहलू, स्थानीय मान और संगणना संबंधी) में समस्याएँ आती हैं। शिक्षकों को अच्छे निदानकारी परीक्षणों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की ज़रूरत है, जो उन्हें उपचार के प्रयासों में मदद करेगा। ठीक इसी तरह, निदानात्मक कार्य के लिए भी विशिष्ट रूप से विकसित सामग्री और नियोजन की ज़रूरत है ताकि शिक्षक प्रत्येक बच्चे के साथ अलग से काम कर पाएँ। इस उपचारात्मक काम की शुरुआत उन चीज़ों से होगी जो बच्चे को पहले से आती हैं और उन चीज़ों तक जाएगी जिन्हें बच्चे को सीखने की ज़रूरत है। यह आकलन और सतर्क अवलोकन की सतत प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। शब्दों का बिना सोचे-विचारे किया गया उपयोग, प्रभावशाली शिक्षाशास्त्र की आम समस्याओं से हमारा ध्यान हटा देता है और अधिगम एवं असफलता की ज़िम्मेदारी पूरी तरह से बच्चे पर डाल देता है।

3.11.2 शिक्षार्थियों का आकलन

बच्चे की अधिगम की गुणवत्ता और विस्तार पर लिखी गई एक सार्थक रपट को समावेशी होना चाहिए। हमें एक ऐसी पाठ्यचर्या की आवश्यकता है जिसमें सृजनात्मकता, नवप्रवर्तकता और बालक का संपूर्ण विकास हो। तो ऐसे में पाठ्यपुस्तक आधारित अधिगम और रटे हुए तथ्यों को जाँचने वाले परीक्षण, दोनों ही बेकार हैं। हमें मूल्यांकन और प्रतिपुष्टि को पुनः परिभाषित करने और

उनके नए मानक ढूँढ़ने की ज़रूरत है। विशिष्ट विषयों में शिक्षार्थियों की उपलब्धि का बड़े आराम से परीक्षण हो जाता है। उसके अलावा हमें आकलन में सीखने के प्रति अभिवृत्तियों, रुचि और स्वयं सीखने की क्षमता को भी शामिल करना होगा।

3.11.3 शिक्षण के क्रम में आकलन

प्रगति-पत्र (रिपोर्ट कार्ड) तैयार करने से शिक्षक को अपने प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में यह सोचने का मौका मिलता है कि उसने सत्र के दौरान क्या सीखा और किस क्षेत्र में उसको ज्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है। ऐसे रिपोर्ट कार्ड को लिख पाने के लिए शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में सोचना होगा और इसीलिए रोज़मर्रा के शिक्षण के दौरान उस पर ध्यान देना होगा। इसके लिए विशिष्ट परीक्षाओं की ज़रूरत नहीं है। स्वयं सीखने वाली गतिविधियाँ बच्चों में निरंतर चलने वाले अवलोकनात्मक एवं गुणात्मक आकलन का आधार बनती हैं। अवलोकन के आधार पर रोज़ की दैनंदिनी रखने से निरंतर, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में मदद मिलती है। एक शिक्षक की साप्ताहिक डायरी से लिया गया अंश – ''किरण को अपने काम में मज़ा आया। उसको वे किताबें फौरन पसंद आईं जो छोटी थीं और जिनमें जानकारी थी। वह कहता है कि उसे साफ और सादी भाषा पसंद है। तथ्यों को लिखते हुए वह अक्सर संक्षिप्त उत्तर लिखता है। उसका कहना है कि इससे वह चीज़ों को आसानी से समझ पाता है। उसे व्यावहारिक तरीका पसंद है''। इसी तरह विभिन्न स्तर पर बच्चों के काम और उनके बारे में लिखने से शिक्षार्थी और शिक्षक को उसके अधिगम की प्रगति का व्यवस्थित रिकॉर्ड मिल जाता है।

यह विश्वास कि आकलन से सीखने में आने वाली कठिनाइयों का पता लगना ही चाहिए ताकि उनका उपचार हो सके अक्सर बहुत ही अव्यावहारिक हो जाता है और यह शिक्षाशास्त्रीय प्रयास की ठोस समझ पर आधारित नहीं होता। अवधारणात्मक विकास से जुड़ी समस्याएँ पहचाने जाने के लिए औपचारिक परीक्षण का इंतज़ार नहीं कर सकतीं। पढ़ाने के क्रम के दौरान ही एक शिक्षक ऐसी समस्याओं से अवगत हो सकता है।

3.11.4 पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र जो अंकों के लिए जाँचे नहीं जा सकते

पाठ्यचर्या के सभी विषय परीक्षा द्वारा नहीं जाँचे जा सकते; बल्कि ऐसा करना तो पाठ्यचर्या के उन क्षेत्रों के सीखने की प्रकृति के विपरीत होगा। इनमें काम, स्वास्थ्य, योग, शारीरिक शिक्षा, संगीत एवं कला शामिल हैं। यद्यपि शारीरिक शिक्षा और योग के कौशल आधारित पक्षों का परीक्षण किया जा सकता है परन्तु स्वास्थ्य से जुड़े पक्षों को सतत और गुणात्मक आकलन की ज़रूरत होती है। वर्तमान में इन्हें पाठ्यचर्या में कम महत्व देने का चलन है। इन क्षेत्रों के लिए न ही पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करवाई जाती है, और न ही पाठ्यचर्या के लिए ढंग से योजना बनाई जाती है और आगे बढ़ें तो इन विषयों को दिए गए समय को 'विशेष पढ़ाई' के लिए हमेशा बलिदान कर दिया जाता है। पाठ्यचर्या के इन भागों के साथ यह बहुत ही बड़ा समझौता है, जबकि इन भागों की गहरी शैक्षिक महत्ता और संभावनाएँ होती हैं।

'अंक' बिना दिए भी बच्चों का इन क्षेत्रों में विकास के लिए आकलन किया जा सकता है। भागीदारी, रुचि, और जुड़ाव तथा जिस स्तर तक क्षमताओं एवं कौशलों का विकास हुआ, ये कुछ सूचक हैं जिनके आधार पर शिक्षक यह समझ बना सकते हैं कि बच्चों को इन गतिविधियों से कितना फायदा हुआ है। बच्चों को अगर अपने अधिगम के बारे में खुद बताने के लिए कहा जाए तो उससे भी शिक्षकों में बच्चों की शैक्षिक उन्नति संबंधी अंतर्दृष्टि विकसित होगी और पाठ्यचर्या एवं शिक्षाशास्त्रीय सुधार करने के आधार मिलेंगे।

3.11.5 आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन

आकलन और परीक्षाओं को विश्वसनीय होना चाहिए, एवं अधिगम को मापने के वैध तरीकों पर आधारित होना चाहिए।

जब तक परीक्षाएँ बच्चों की पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान को याद करने की क्षमताओं का परीक्षण करती रहेंगी, तब तक पाठ्यचर्या को सीखने की तरफ मोड़ने के सभी प्रयास विफल होते रहेंगे। पहला बिंदु यह है कि ज्ञान-आधारित विषय क्षेत्रों में परीक्षाएँ ये समझ पाएँ कि बच्चों ने क्या सीखा और उस ज्ञान को समस्या सुलझाने और व्यवहार में लाने की उनकी क्षमता को जाँच पाएँ। इसके अलावा, परीक्षाएँ यह भी जाँचने में सक्षम होनी चाहिए कि विद्यार्थियों की सोचने की प्रक्रियाएँ कैसी हैं तथा यह पता लगा पाएँ कि क्या शिक्षार्थी ने यह सीखा कि जानकारी कहाँ मिलती है, उस जानकारी का इस्तेमाल कैसे करते हैं और उसका विश्लेषण और मूल्यांकन कैसे करते हैं।

आकलन के लिए जो प्रश्न निर्धारित किए जाते हैं उन्हें किताब में दी गई जानकारी से आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। कितनी ही बार बच्चों का अधिगम इसलिए बहुत ही सीमित रह जाता है क्योंकि शिक्षक उन उत्तरों को स्वीकार नहीं करते जो कुंजियों में दिए गए उत्तरों से भिन्न होते हैं।

ऐसे प्रश्नों को भी इस्तेमाल करना चाहिए जिनका कोई एक उत्तर नहीं होता और जो बच्चों के सामने चुनौती पेश करते हैं। अच्छे प्रश्न और परीक्षा-पत्र बनाना भी एक कला है और शिक्षकों को ऐसे प्रश्न बनाने पर बल देने की ज़रूरत है। शिक्षकों की अच्छे प्रश्न बनाने की क्षमता और रुचि को बढ़ावा देने के लिए ज़िला या राज्य के स्तर पर प्रतियोगिताएँ की जा सकती हैं। सारे प्रश्न-पत्र कठिनाई की ऐसी रूपरेखा लिए हुए होने चाहिए कि सभी बच्चे सफलता के स्तर को अनुभव कर पाएँ और उत्तर देने एवं समस्या सुलझाने की क्षमता में आत्मविश्वास विकसित कर पाएँ।

प्रश्न उठना

एक लौह प्रगलन प्लांट आरंभ करने से पहले कौनसी चार बातें ध्यान में रखने की ज़रूरत होती है ?

के स्थान पर

यदि एक उद्योगपति एक लौह प्रगलन प्लांट लगाना चाहता है तो वह किस स्थान का चुनाव करे और क्यों ?

चिड़िया की चोंच का आकार अनुकूलन में किस प्रकार से सहायता देता है।

के स्थान पर

अपने पड़ोस में दिखने वाली साधारण चिड़िया की चोंच का चित्र बनाओ। उसकी चोंच के आधार पर वर्णित करो कि उसकी भोजन की आदतें क्या होंगी और तुम्हारे पड़ोस में उसे वैसा भोजन कहाँ मिल पाएगा?

खुली-पुस्तक परीक्षा-पत्र बनाना भी एक चुनौती है जिसे स्कूल के प्रत्येक स्तर के पाठ्यचर्या प्रयासों में शामिल करना चाहिए। लेकिन ऐसा करने के लिए अध्यापकों और प्रश्न-पत्र बनाने वालों से यह अपेक्षा होगी कि वे व्याख्या करने और अधिगम के व्यावहारीय पहलू पर ज्यादा ज़ोर दें न कि किताब में दिए गए तर्क और तथ्यों पर। इस तरह के कई सफल उदाहरण हमारे पास मौजूद हैं कि ऐसी परीक्षाएँ बड़े स्तर पर आयोजित की जा सकती हैं और शिक्षक खुद ऐसी परीक्षाओं के परिणामों का नियमन कर सकते हैं और उन पर ऐसे नियमन के लिए भरोसा किया जा सकता है। इसीलिए, परियोजनाओं और प्रयोगशाला के काम के आकलन को भी और विश्वसनीय और पुख्ता बनाया जा सकता है।

यह ज़रूरी है कि जाँचे गए उत्तर वापिस मिलने पर बच्चे अपने उत्तरों को दोबारा लिखें और शिक्षक उन पर पुनर्विचार करें ताकि यह सुनिश्चित किया जा

सके कि बच्चों ने कुछ सीखा और ऐसी कठिन परीक्षा देने से उन्हें कोई लाभ हुआ।

स्पर्धा प्रोत्साहन तो देती है लेकिन वह प्रेरणा का आंतरिक रूप न होकर बाह्य रूप ही होता है। निश्चय ही इसे स्थापित करना और संचालित करना बड़ा आसान होता है इसीलिए शिक्षक और स्कूली व्यवस्थाएँ उत्कृष्टता की प्रेरणा को पोषण देने के लिए अक्सर इसका सहारा ले लेती हैं। स्कूल पूर्व-प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को प्रथम, द्वितीय की श्रेणियों में बाँटने लगते हैं, जिससे उनमें स्पर्धा की भावना आत्मसात हो। इस तरह की प्रतियोगी प्रेरणा के अधिगम पर कई नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं; अक्सर प्रभाव बनाने के लिए सतही स्तर पर सीखना भर पर्याप्त होता है। समय के साथ-साथ बच्चे अपनी रुचि के अनुसार पहल करने की क्षमता खो देते हैं और इस प्रक्रिया में वे क्षेत्र जिनमें पाठ्यचर्या में 'अंक' नहीं दिए जाते उपेक्षित हो जाते हैं। इसका कक्षा की संस्कृति पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि बच्चे व्यक्तिवादी बनते हैं और सामूहिक कार्य करने की क्षमता खो बैठते हैं। 'परीक्षा' को बिलकुल असंगत महत्व दिया जाता है और उन पर अनावश्यक ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिसमें अक्सर गोपनीयता और निरीक्षण की सख्त व्यवस्था की जाती है। माध्यमिक कक्षाओं तक तो इनके शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव आसानी से नहीं दिखते हैं लेकिन यह बच्चों में बेहद तनाव को जन्म देता है जिससे वह बहुत जल्दी उत्तेजित होने की हालत में पहुंच जाते हैं। स्कूल और शिक्षकों को अपने आप से पूछने की ज़रूरत है कि क्या इस तरह के व्यवहारों से सच में बहुत ज्यादा लाभ होता है और अधिगम को दरअसल किस हद तक अंक देने और श्रेणीकृत करने की ज़रूरत है।

3.11.6 स्व–आकलन और प्रतिपुष्टि

आकलन की भूमिका उस प्रगति को समझने की होती है जो शिक्षार्थी और शिक्षक निर्धारित लक्ष्यों की दिशा में करते हैं। और इस प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए उसकी समीक्षा भी करते हैं। प्रतिपुष्टि पाने के ऐसे अवसर हमेशा उपलब्ध होने चाहिए जो प्रदर्शन को दोहराने व सुधारने की दिशा में ले जाएँ, परीक्षाओं व मूल्यांकन के भय का इस्तेमाल किए बिना पढ़ने की दिशा में प्रेरित करें।

विद्यार्थियों की मौजूदगी में की गई जाँच व सुधार कार्य उन्हें इस तरह की प्रतिपुष्टि देते हैं कि उन्होंने क्या सही किया, क्या गलत और क्यों? बच्चों से इस बारे में जानकारी लेना कि उन्होंने कोई उत्तर क्यों दिया, शिक्षक को लिखित उत्तर से आगे जाने में मदद देता है और बच्चों की सोच से जुड़ने का मौका देता है। ऐसी प्रक्रियाएँ परीक्षाओं के डरावने और निर्णायक गुण को भी दूर कर देती हैं और बच्चों को सक्षम बनाती हैं कि वह अपनी गलतियों को समझें, उन पर ध्यान दें और उनसे सीखें। कभी-कभी प्रधानाध्यापक यह कह कर एतराज उठाते हैं कि बच्चों की मौजूदगी में की गई जाँच में वस्तुपरकता नहीं आ पाती। वस्तुपरकता के लिए यह सरोकार बिलकुल अनुचित है जो प्रतियोगी व्यवस्था से उपजता है और जो बच्चों के परीक्षण में विश्वास रखता है। वस्तुपरकता की दृष्टि से यह सरोकार उस मूल्यांकन के लिए भी अनुचित है जो शैक्षिक लक्ष्यों से सुसंगत हो।

न केवल अधिगम के परिणाम बल्कि अधिगम के अनुभवों का भी मूल्यांकन होना चाहिए। शिक्षार्थी बहुत खुशी से अपने अनुभवों की संपूर्णता पर टिप्पणी देते हैं। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तर के ऐसे अभ्यास बनाए जा सकते हैं जिनसे बच्चे अपने अधिगम का आकलन करने और उस पर चिंतन करने में सक्षम हो पाएँ। इस तरह के अनुभव उन्हें स्व-नियामन की क्षमताएँ भी देते हैं जो 'सीखने के लिए सीखने' की खातिर ज़रूरी होती हैं। ऐसी जानकारी शिक्षक के लिए भी बहुत मूल्यवान प्रतिपुष्टि होती है जिसका उपयोग अधिगम की पूरी व्यवस्था को बेहतर बनाने में किया जा सकता है।

बच्चों के साथ की गई प्रत्येक कक्षायी अंतःक्रिया की माँग होगी कि बच्चे अपने काम का खुद मूल्यांकन करें और उनसे यह चर्चा भी हो कि किसका परीक्षण किया जाना चाहिए और यह पता करने के क्या तरीके हैं कि क्षमताओं का विकास दरअसल हुआ कि नहीं। बहुत छोटे बच्चे भी इसका सही आकलन कर सकते हैं कि कौन से काम वे कर पाते हैं और कौन से नहीं। अध्यापन की भूमिका यह है कि वह प्रत्येक बच्चे को उसकी क्षमता के अनुसार सीखने के सर्वश्रेष्ठ मौके दे और इस तरह के अनुभव दे कि जिससे संज्ञानात्मक गुणों का विकास हो, शारीरिक कुशलक्षेम सुनिश्चित हो, खेल-कूद संबंधी गुणों का भी विकास हो और सौंदर्यबोध और भावनात्मकता भी विकसित हो।

यह ज़रूरी है कि रपट कार्ड बच्चों और माता पिता के सामने बच्चों के कई क्षेत्रों में विकास पर एक समावेशी और समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करे। शिक्षक प्रत्येक बच्चे के बारे में ऐसी बातें कह पाएँ जो बताएँ कि उस बालक/शिक्षार्थी पर व्यक्तिगत ध्यान दिया गया है, एक सकारात्मक आत्म छवि को मजबूत करती हो और उनके सामने ऐसे व्यक्तिगत उद्देश्य रख पाती हो जिनको लक्ष्य करते हुए वे काम करें। चाहे अंकों की सूचना दी जा रही हो या श्रेणियों की, शिक्षक के द्वारा दिया गुणात्मक कथन आकलन के समर्थन के लिए बहुत ज़रूरी है। केवल इसी तरह का रिश्ता बनाने के बाद एक शिक्षक विद्यार्थियों को प्रभावित कर सकता है और उनके अधिगम में योगदान दे सकता है। शिक्षा प्रत्येक बच्चे का आकलन करे, इसके अलावा प्रत्येक बच्चा स्वयं का भी आकलन कर सकता है और उस स्व-आकलन को रिपोर्ट कार्ड में शामिल करना चाहिए।

वर्तमान में, कई रिपोर्ट कार्डों में विषय क्षेत्रों पर जानकारी होती है लेकिन बच्चे के विकास के दूसरे पहलुओं पर बताने के लिए कुछ नहीं होता है; जैसे – स्वास्थ्य, शारीरिक कुशलता, खेलों में दक्षता, सामाजिक कौशल, कला और हस्तकला में दक्षता। बच्चों की शिक्षा और उनके विकास के इन पहलुओं पर दिए गए गुणात्मक कथन शैक्षिक सरोकारों का एक समग्र आकलन दे सकेंगे।

3.11.7 वे क्षेत्र जिनके बारे में नए सिरे से सोचने की ज़रूरत है

पाठ्यचर्या के ऐसे कई क्षेत्र हैं जिनका आकलन किया जा सकता है पर जिनके लिए हमारे पास विश्वसनीय और प्रभावी उपकरण नहीं हैं। इसमें वह अधिगम भी शामिल है जिसके लिए समूहों में काम होता है और नाट्य, काम और हस्तकला के क्षेत्रों का अधिगम भी शामिल है जहाँ कौशल एवं दक्षताएँ लंबे समय में विकसित हो पाती हैं और जिन्हें बहुत सावधानी से किए गए अवलोकन की ज़रूरत होती है।

सतत व समावेशी मूल्यांकन को ही एक सार्थक मूल्यांकन माना गया है। हालांकि इस पर भी सावधानीपूर्वक विचार करने की ज़रूरत है कि इसका प्रभावी उपयोग करने के लिए कब लागू करना है। अगर मूल्यांकन को सार्थक रूप से लागू करना है और उसके आकलन की विश्वसनीयता रखनी है तो ऐसा मूल्यांकन शिक्षकों से बहुत ज्यादा समय देने की मांग करता है तथा यह मांग भी करता है कि वह सावधानी और कुशलता से रिकॉर्ड रखे। अगर यह प्रक्रिया महज बच्चों के बोझ को बढ़ाए और सारी गतिविधियों को आकलन का ज़रिया बना दे और उन्हें शिक्षक की ताकत का अनुभव कराती रहे तो वह शिक्षा के प्रयोजन को ही विफल कर देती है। जब तक व्यवस्था ऐसे आकलन के लिए पर्याप्त रूप से तैयार नहीं है तब तक शिक्षकों के लिए यही बेहतर है कि वे आकलन के सीमित रूपों का ही उपयोग करें। लेकिन उसमें वे आयाम शामिल कर लें जिनसे आकलन सीखने के एक सार्थक दस्तावेज़ के रूप में उभर पाए।

अंततः आकलन में विश्वसनीयता को विकसित करने और बनाए रखने की ज़रूरत है जिससे वे

प्रतिपुष्टिकरण की भूमिका को सार्थक रूप से निभाते रहें।

3.11.8 विभिन्न चरणों में आकलन

पूर्व प्राथमिक शिक्षा और प्राथमिक चरण की कक्षा 1 एवं 2 : इस स्तर पर आकलन में विभिन्न क्षेत्रों में बच्चों की गतिविधियों पर दिए गए गुणात्मक कथन होने चाहिए और उनके स्वास्थ्य और शारीरिक विकास का आकलन होना चाहिए। यह आकलन रोज़मर्रा की अंतःक्रियाओं के दौरान किए गए अवलोकनों पर आधारित होने चाहिए। किसी भी कारणवश बच्चों की लिखित या मौखिक परीक्षा नहीं होनी चाहिए।

प्राथमिक चरण की कक्षा 3 से 8 तक : यहाँ कई तरीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है जिसमें मौखिक एवं लिखित परीक्षा और अवलोकन शामिल हैं। बच्चों को यह पता होना चाहिए कि उनका आकलन किया जा रहा है पर उसको उनकी शैक्षणिक प्रक्रिया के भाग की तरह प्रस्तुत करना चाहिए न कि डरावनी धमकी की तरह। इस चरण पर उपलब्धि के लिए दिए गए अंक और गुणात्मक कथन उन क्षेत्रों के लिए बहुत ज़रूरी हैं जिन पर ज्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। कक्षा 5 से बच्चों के स्व-मूल्यांकन को रिपोर्ट कार्ड में शामिल किया जा सकता है। बड़ी-बड़ी मासिक और वार्षिक परीक्षाओं की जगह समय समय-पर छोटी-छोटी परीक्षाएँ होनी चाहिए। ऐसी परीक्षाएँ जिनमें परीक्षण का आधार मानदण्ड हो। कक्षा 7 से सत्रीय परीक्षाएँ शुरू होनी चाहिए जब बच्चे ज्यादा बड़े हिस्से पढ़ने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार हों और उत्तरों पर काम करते हुए परीक्षा में कुछ घंटे बिताने लायक हो जाएँ। रिपोर्ट कार्ड में फिर से स्वास्थ्य और पोषण पर सामान्य टिप्पणियाँ देने के साथ-साथ शिक्षार्थी के समग्र विकास पर विशिष्ट टिप्पणियाँ हों और माता-पिता के लिए सुझाव हों।

माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक चरणों में कक्षा 9 से 12 : पाठ्यचर्या के ज्ञान आधारित क्षेत्रों के लिए आकलन, परीक्षाओं, परियोजनाओं की रिपोर्ट पर आधारित हो सकता है और साथ में शिक्षार्थी का स्व-आकलन भी शामिल हो। बाकी विषयों का आकलन अवलोकन एवं स्व-मूल्यांकन द्वारा किया जाना चाहिए।

रिपोर्ट में विद्यार्थियों के विभिन्न कौशलों/ज्ञान के क्षेत्रों और प्रतिशतांकों के बारे में अधिक विश्लेषण हो। यह बच्चों को उन विषयों को समझने में मदद करेगा जिन पर उन्हें ध्यान देना चाहिए और उनके आगे के विकल्प चयन की प्रक्रिया के लिए एक आधार भी देगा।

सच में, बच्चों पर इस तरह बोझ बढ़ाना बहुत ही क्रूरता है। मुझे अपने बेटे की मदद के लिए इस लड़के को नौकरी पर रखना पड़ा!
(साभारः आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया)